thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य समाज सान्ताक्रुज़
ARYA SAMAJ SANTACRUZ
स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

❑ वर्ष-5 ❑ अंक-11
❑ मुम्बई ❑ नवम्बर-2014
❑ मूल्य-रु.9/-

७१वाँ स्थापना दिवस एवं पुरस्कार समारोह के कुछ चित्र

ओड़िशा से पधारे हुए आचार्य बृहस्पति जी प्रवचन करते हुए।

आचार्य बृहस्पति जी को पं. युधिष्ठिर मीमांसक स्मृति पुरस्कार से सम्मानित करते हुए तथा ट्राफी देते हुए श्री लालचन्द आर्य एवं श्री चन्द्रगुप्त आर्य-प्रधान आर्य समाज सान्ताक्रुज़।

आचार्य बृहस्पति जी को श्री प्रणव शास्त्री-सुपुत्र श्री सोमदेव शास्त्री-मोतीमाला एवं श्रीफल भेंट करते हुए,
साथ में हैं श्रीमती सुदक्षिणा शास्त्री तथा उनकी बहू।

मन्चासिन विद्वत वृन्द

thearyasamaj.org

।। ओ३म् ।।

''महर्षि का जीवन प्रेरक एवं मार्ग दर्शक है''

ऋषिवर दया, करूणा और मानवता के सागर थे। वे सदा गाली देनेवाले को फल व मिठाइयाँ, जहर देने वाले को क्षमा दान तथा विरोधियों को सम्मान देते थे। वे कभी अपने सुख-दु:ख के लिये न चिन्तित हुए और न रोये, मगर देश, धर्म, जाति की दुर्दशा, नारी की दुर्गति और देश में फैले हुए अज्ञान, ढोंग, पाखण्ड, गुरुढम पर निरन्तर व्यथित होते रहे और उसे दूर करने के लिये संघर्ष करते रहे। उन्हें सदा यही पीड़ा व्यथित किये रहती थी- भारत पुन: जगदगुरु के गौरव पद पर कैसे प्रतिष्ठित हो? धर्म, भक्ति तथा परमात्मा के नाम पर फैली हुई- मनगढ़न्त पोपलीलाएँ कैसे दूर हों। इन झूठे पाखण्डी गुरुओं, महन्तों, सन्तों आदि की इन भोली-भाली जनता को बहकाने, ठगने की प्रवृत्ति पर कैसे विराम लगे? देश सत्यज्ञान एवं विद्या के प्रकाश से प्रकाशित होकर कैसे दु:ख, दैन्य, निर्धनता, रोग-शोक, आदि से मुक्त हो। ऋषि की मार्मिक पीड़ा यही रही है:-

इस हूक सी दिल में उठती है, इक दर्द जिगर में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है ।।

ऋषि सदा देश के दुर्भाग्य, दुर्गति, कलह, पतन एवं परस्पर की फूट पर रोये। जो देश कभी शान्ति सुख मानवता और धन-धान्य का भण्डारी था। आज वह कितनी दीन-हीन अवस्था में है। यह पीड़ा उन्हें सदा बेचैन रखती थी। एक दिन प्रयाग में स्वामी जी गंगा के किनारे बैठे हुए प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले रहे थे, उन्होंने देखा-एक माता मरा हुआ बच्चा हाथों पर उठाये हुए गंगा में प्रविष्ट हुई, कुछ गहरे पानी मे जाकर उसने बच्चे के शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया, रोते-बिलखते हुए बालक के शव को उसने पानी में प्रवाहित कर दिया। ऋषि इस हृदय विदारक दृश्य को देखकर अपने को संभाल नहीं सके। करूणा स्वर से बोले- हाय ! हमारा देश इतना निर्धन हो गया है कि मृतक शरीर को कफन भी नहीं मिलता, उनकी आखों से आँसुओं की धारा अविरल बहने लगी। कभी यह भारत धन-धान्य ऐश्वर्य और विभूतियों से भरा-पूरा था, सोने की चिड़िया कहलाता था, आज देश की यह दयनीय दशा है? वे देश की निर्धनता तथा दुर्दशा पर घण्टों चिन्तन-मनन करते रहे।

ऋषि दयानन्द ने देश भर का भ्रमण किया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व, वाणी तथा लेखनी से सभी को प्रभावित किया। जिधर से निकले उधर ही वैचारिक क्रान्ति, सत्य तथा वेदानुकूल विचारों की छाप छोड़ते गये। अनेक राजे-महाराजे, धनी-मानी उनके शिष्य बन गये। बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों से उनके शस्त्रार्थ हुए। सभी उनकी विद्या, बुद्धि तथा तेज और बल से प्रभावित थे। उन्होंने दुनियाँ को झुकाया, पर स्वयं नहीं झुके। दूसरों को बदला, स्वयं नही बदले! जो भी उनके सम्पर्क में आया उसके विचारों और जीवन का कायाकल्प हो गया। उनके व्यक्तित्व एवं कृतितव में अद्‌भुत चुम्बकीय आकर्षण शक्ति थी। घोर शत्रु भी उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे। वे दिव्य गुणों के खान थे। उनका सम्पूर्ण जीवन प्रेरक, आदर्श, शिक्षाप्रद और नव जीवन दायक था। उनके दिव्य जीवन से न जाने कितनों ने अपने जीवन संभाले और ऊपर उठे । उनकी प्रेरक घटनाओं, बातों और उपदेशों से इतिहास भरा पड़ा है। ऋषि का जीवन-दर्शन हमारे लिए मील का पत्थर है।

भोगी, विलासी, दुर्व्यसनों में फसे मुन्शीराम के जीवन को ऋषि के एक भाषण ने बदल दिया। उनके जीवन ने ऐसी करवट बदली कि वे मुन्शीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। स्वामी श्रद्धानन्द ने देश धर्म-जाति के लिए जो प्रेरक कार्य किये हैं, वे हमेशा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। यदि हम जीवन उत्थान, निर्माण तथा देश, धर्म, जाति आदि की सेवा का पाठ व शिक्षा लेना चाहे तो स्वामी श्रद्धानन्द से बढ़कर कोई प्रेरक जीवन न मिलेगा।

मुन्शीराम की तरह ही अमीचन्द का जीवन भी बुराईयों तथा दोषों से भरा हुआ था। किसी सभा में ऋषिवर के प्रवचन से पूर्व उन्होंने भजन सुनाया। भजन बड़ा ही मधुर था। लोगों ने अमीचन्द के बारे में ऋषिवर को बता रखा था। सहज ही ऋषि जी की सत्य वाणी निकली-अभीचन्द ! तुम हो तो हीरे मगर कीचड़ में फॅसे हो। इस प्रेरक व प्रभावी वाक्य ने अमीचन्द के जीवन को पलटकर रख दिया। बाद में अमीचन्द ने भजनों के माध्यम से आर्य समाज का बड़ा प्रचार व प्रसार किया। ऋषि की वाणी और नज़र में एक अद्‌भुत जादू था, जो सिर पर चढ़कर बोलते लगता था। मृत्यु का अन्तिम दृश्य-ऋषि की सहन शक्ति, आस्तिकता, प्रभुभक्ति, मृत्यु से निर्भयता आदि को देखकर नास्तिक गुरूदत्त आस्तिक बन गये। उनके विचार बदल गये। उन्होंने सारा जीवन ऋषि मिशनको समर्पित कर दिया।

पं. लेखराम ऋषि के जीवन और विचारों पर इतने दीवाने हुए कि सारा जीवन आर्य मुसाफिरी में गुजार दिया। ऋषि मिशन पर बलिदान होकर आर्य जनों को सन्देश दे गये **तकरीर और तहरीर** का काम बन्द न होने देना ।

महात्मा हंसराज ने सारा जीवन सादगी, त्याग, सेवा और फकीरी में रहकर ऋषिमिशन को समर्पित कर दिया। ऋषि के जीवन चरित्र देखकर न जाने कितने दीवाने, मस्ताने और जनून वाले बने है, उन सभी को स्मरण करना सीमित स्थान में सम्भव नहीं है। उन सभी व्यक्तित्व एवं योगदान को स्मरण व नमन ।

ऋषि के जीवन की अनेक प्रेरक उदाहरण, घटनाएँ व बातें हैं जो आज के जीवन और जात को संभलने, सुधरने व ऊपर उठने की शिक्षा व प्रेरणा देती हैं। स्वामी जी का जीवन खुली किताब था। उनकी कथनी और करनी एक थी। उन्होंने जो कहा उसे कर दिखाया। प्रभु विश्वास तथा सत्य उनके जीवन का आधार था।

महर्षि दयानन्द ने जीवन यह गलत बातों, ढोंग, पाखण्ड, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, अन्धविश्वास आदि से कभी समझौता नहीं किया। यदि किया होता तो वे उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े भगवान् होते । उनका व्यक्तित्व अद्वितीय गुणों तथा यौगिक सिद्धियों से परिपूर्ण था। मगर वे इतने महान व निरहंकारी थे, सदा साधारण मानव बनकर ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया। हम आर्यजन स्वार्थ, लोभ, पद आदि के लिए कदम-कदम पर सिद्धान्त विरूद्ध बातों से समझौता करने के लिए तैयार हो जाते हैं। असत्य बातों से आत्मा को पतित कर लेते हैं। हमें ऋषि के प्रेरक जीवन से शिक्षा व सत्य पालन का व्रत लेना चाहिये।

खुशहाल चन्द्र आर्य
द्वारा- गोविन्दराम आर्य अण्ड सन्स, १८० महात्मा गान्धी रोड,
(दोतल्ला) कोलकत्ता-७०००७
फोन : २२१८३८२५, ६४५०५०१३,
ऑफिस :- २६७५८९०३ (घर) (०३३)
मोबाईल : ९८३० १३५ ७९४

thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ५ अंक ११ (नवम्बर-२०१४)

- दयानंदाब्द : १९१, विक्रम सम्वत् : २०७१
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११५

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/-
- एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/-
- वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/-
- आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
''महर्षि का जीवन प्रेरक एवं मार्ग दर्शक है''	२
सम्पादकीय	३
''भारत वर्ष ही आर्यो की मूल मूमि है''	४-५
आत्म विशुद्धि द्वारा सर्वविधैश्वर्य-	५
योगासन व्यायाम	६
नवम उपदेश	७
ईश्वर सर्व-व्यापक है	८
डा. सत्यदेव निगमालंकार	९-१०
चाणक्य नीति दर्पण	११-१२
केरल में वेद की ज्योति जली	१३
कर्मफल सिद्धांत-कुछ अनसुलझे प्रश्न	१४
जीवन-बन्धनों से मुक्ति	१५-१६

सम्पादकीय कार्य पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का उनके समक्ष का इतिहास व तत्पश्चात् उनके अनुयायियों द्वारा तन-मन-धन से नि:स्वार्थ भाव से की गयी सेवाओं के फल स्वरूप आर्य समाज एक क्रान्तिकारी संगठन के रूप में फैलता रहा। वेद प्रचार हेतु संन्यासी/विद्वानों/दानदाताओं ने नि:स्वार्थ भाव से आर्य समाजों/गुरूकुलों को सींचा/स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरूकुल के स्नातकों ने राष्ट्र के आंदोलनों में सकारात्मक सहयोग दिया। यह वह समय था जब दानदाता, विद्वान, कार्यकर्ता में रोटी-बेटी का संबंध भी स्थापित था।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के परिपेक्ष्य की तुलना यदि हम वर्तमान स्थिति से करते हैं तो पाते हैं कि आज आर्य समाज धीरे-धीरे कर्मकाण्ड तक सीमित होता जा रहा है। हर कार्य के पीछे धन परिलिक्षित होता जा रहा है। अधिकारियों का समूह अलग, विद्वानों का समूह अलग, प्रत्येक आर्य समाजों का कार्य करने का तरीका अलग। परिणामस्वरूप धन, समय व शक्ति का रचनात्मक उपयोग नहीं हो पा रहा है। औपचारिकतावश अधिकांश आर्य समाजें अपने वेद प्रचार, वार्षिकोत्सव व अन्य कार्यक्रमों का आयोजन कर रही हैं, जिनका वर्तमान समय में बजट ही कम-से-कम एक लाख रूपये हो जाता है। परन्तु उपस्थिति नगण्य होती है। आज की बड़े बड़े शहरो की जीवन-शैली की व्यस्तता एवं सुलभ उपलब्ध संसाधनों के उपभोग का आदि बनता जा रहा मनुष्य अवकाश के समय में भी घर से बाहर कम निकल पा रहा है। गुरूकुल से पढ़कर निकला एक वर्ग आज आर्य समाज में कटा-कटा सा महसूस कर रहा है, अधिकारियों के परिवारों के सदस्य समाजों से कटते जा रहे हैं। एक तरफ कुछ अधिकारी अपना अमूल्य समय समाज को संचालन में लगा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ अधिकारियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो समाज में सिर्फ व्यापार करने आ रहा है। आज आवश्यकता है कि आर्य समाजों को घरों में ले जाया जाये। व्यक्तिगत सम्पर्क एक दूसरे के दु:ख सुख मे शामिल होकर ही हम संगठन को मजबूत कर सकते हैं। प्रचार की शक्ति ग्रामों- कस्बों में लगायी जाये। वहाँ की जनता आज भी वेद प्रचार आदि कार्यक्रमों के लिये समय निकालती है। वरना बड़े शहरों में आने-जाने में ही लोग थक रहे हैं। आज आपसी चर्चा करके एकमत होकर कार्य पद्धति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। जिससे हम आप्रासंगिकत न हो सके। संभवत: इससे आर्य समाजों को एक नया स्वरूप मिलेगा व यह आन्दोलन आगे बढ़ेगा। सभी आर्य समाजों एवं आर्य समाज से जुड़ी संस्थाओं में आज आपसी सामन्जस्य की आवश्यकता है जिससे संगठन और मजबूत हो और कार्य निर्बाध गति से बढ़ता रहे।

- संगीत आर्य- 9323 573 892

thearyasamaj.org

''भारत वर्ष ही आर्यों की मूल भूमि है''

नवभारत टाइम्स (मुम्बई) में सितम्बर २०१४ में खबर छपी ''भारत के अतीत के बारे में दिल्ली युनिवर्सिटि इतिहास की किताबें नए सिरे से लिखने के एक प्रोजेक्ट पर काम करेगी। इतिहास की किताबों में लिखा हुआ है कि करीब ३५०० साल पहले विदेशी आर्यों के कबीले पहाड़ों को पार कर भारत में आए।''

किन्तु यदि हम प्राचीनतम् इतिहास व अन्य शास्त्रों को पढ़े पुराने दस्तावेजों व लेखों को खंगाले तो उक्त विदेशी धारणा गलत साबित हो जाएगी। यह बात तो सत्य ही है कि आर्य जाति ही भारत देश की प्राचीनतम् मूल जाति थी। किन्तु अंग्रेजों की गलत नीतियों एवं शिक्षा प्रणाली के कारण उन्होने हमारे इतिहास में अनेक मिथ्या जानकारियां लिख दी तथा उन्होने हमें हमारे ही देश में विदेशी बना दिया।

वेद विश्व का प्राचीनतम् धार्मिक ग्रन्थ है, जिसकी रचना भारत के ऋषियों द्वारा की गयी। ये ऋषि आर्यों के आदि पूर्वज माने जाते हैं अत: आर्य ही भारत के पूर्वज सिद्ध होते हैं। वेद में कहीं भी उल्लेख नहीं है कि हम विदेशी थे। वेद के बाद दुनिया का प्राचीनतम ग्रन्थ मनु महाराज द्वारा रचित मनुस्मृति है उसमें लिखा है- ''एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मन:, स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा:।'' इसका भावार्थ यह हुआ कि प्राचीन काल में इसी आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न विद्वानों से समस्त विश्व के लोग शिक्षा प्राप्त किया करते थे। आर्यों के रहने वाले इस देश को आर्यावर्त्त कहकर पुकारा जाता था, इस प्रकार आर्य इस भूमि के मूल निवासी हुए।

बाल्मीकि रामायण की रचना काल कई हजार वर्ष पूर्व का माना जाता है यह संस्कृत का महाकाव्य भी है। आर्यों की मूल भाषा संस्कृत थी, अत: यह ग्रन्थ आर्यों का ऐतिहासिक ग्रन्थ हुआ। इस दृष्टिकोण से भी आर्यों को ही देश की मौलिक नागरिकता प्राप्त होती है। रामायण में वर्णित सभी नगर व प्रान्त भारत के ही हैं, इतर नहीं। रामायण में राम ने कई बार लक्ष्मण के लिए 'आर्य' शब्द का प्रयोग किया। स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुत्व' में लिखा है- ''महान् प्रतापी राजा राम ने अपनी विजय पताका हिम गिरि से महासागर तक फहराई तथा उन्होंने समस्त भारत में अपना सर्वभौम राज्य स्थापित किया।''

महाभारत काल जो कि ५,००० वर्ष पुराना माना जाता है, उस महाभारत युद्ध में भारत की ही भौगोलिक सीमाओं का वर्णन आता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ- प्रकाश' में लिखा है कि उस महाभारत काल में चीन, अमेरिका, योरोप, यूनान, इरान आदि देशों के राजाओं ने यहां आकर राजसूय यज्ञ में भाग लिया। वे आगे लिखते हैं कि स्वायम्भुव राजा से लेकर पाण्डव पर्यंन्त भारत में आर्यों का ही चक्रवर्ती राज्य रहा। मैत्री उपनिष्द में भी लिखा है कि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त भारत में आर्यकुल के अनेक चक्रवर्ती राजा हुए। भारत के प्रथम राजा से लेकर भरत तक ने भारत पर राज्य किया इससे स्पष्ट है कि आर्यों का भारत पर राज हजारों हजार वर्ष पुराना है। राजा भरत आर्यकुल के सुप्रसिद्ध राजा हुए, उसी के नाम से हमारे देश का नाम आर्यावर्त्त से भारत वर्ष पड़ा। इनका राज्य काल महाभारत से भी अनेक वर्ष पूर्व का था, तो अंग्रेजों की धारणा कि आर्य लोग ३५०० वर्ष पूर्व भारत आए, गलत साबित हो जांती है क्योंकि महाभारत काल का ही समय आज से ५,००० वर्ष पूर्व का है।

किसी भी राज्य में जब वहां के लोग निवास करते हैं तो वे उस राज्य का कोई नाम रखते है। यदि कोई भारत को द्रविड़ों का देश मानता है तो वे बतलाएं कि उन द्रविड़ो ने भारत का क्या नाम रखा था। इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं है। द्रविड़ लोग इस देश का नाम आर्यवर्त अथवा भारतवर्ष तो नहीं रख सकते। यदि उन द्रविड़ों के देश का कोई अपना नाम नहीं, उनका कोई प्रमाणिक इतिहास नहीं, कोई अपना धर्म ग्रन्थ नहीं, कोई साहित्य नहीं, तो किस आधार पर हम भारत को द्रविड़ों का देश मानने का दुराग्रह कर सकते हैं।

इसी प्रकार जब कोई मानव जाति अपना मूल देश छोड़ कर अन्य देश में जाकर विस्थापित होती है, तो भी वह जाति अपने मूल देश को कभी नहीं भूलती, उसे सदा स्मरण करती है। पारसी लोग जो अपने देश फारस को छोड़ कर भारत में आकर बसे, आज ८०० वर्ष के बाद भी उन्हे अपना मूल देश स्मरण है। फिर आर्यों को अपने मूल देश की कोई भी स्मृति क्यों नहीं और जिस देश को छोड़ कर आए उस देश में उनकी कोई स्मृतियां, कोई चिन्ह, कोई इतिहास अवशेष क्यों नहीं? अत: आर्यों को विदेशी मानना, दिन को रात मानने के समान हठ करना है।

आर्यों की भाषा संस्कृत मानी जाती है। इस भाषा का प्रचलन लाखों वर्ष पुराना है। राम के युग से यह भाषा चली आ रही है। राम का युग लाखों वर्ष पुराना माना जाता है अत: आर्य भारत में लाखों वर्षो से रह रहे हैं। धीरे धीरे संस्कृत भाषा से हिन्दी भाषा का जन्म हुआ फिर उससे अनेक भारतीय भाषाएं पल्लवित एवं पुष्पित हुई। अत: संस्कृत ही समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। आर्यों का सबसे बड़ा धार्मिक ग्रन्थ वेद भी संस्कृत भाषा में भारत में लिखा गया जिसे अनेक बुद्धिजीवि सृष्टि के आदि काल से रचित मानते हैं। यदि वेद भारतीय हैं, संस्कृत भाषा भारतीय है तो इनके मानने वाले व बोलने वाले विदेशी कैसे हो सकते हैं?

मोहन जो दडो सभ्यता की खुदाई में मिली मोहर (सील) भी हमारे प्राचीनतम् धार्मिक ग्रन्थ ऋग्वेद के प्रथम अध्याय के १६४.२० मन्त्र में वर्णित वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों के दृश्य से हूबहू मेल खाती है अत: सिद्ध

thearyasamaj.org

होता है कि वैदिक सभ्यता मोहन जो दडो से पूर्व की सभ्यता है।

मनुस्मृति में आर्यावर्त्त (भारत) की भौगोलिक सीमाओं का वर्णन किया गया है- ''उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में विध्यांचल पर्वत, पश्चिम में सरस्वती तथा पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी बहती है, उस देश का नाम आर्यावर्त्त हैं।''

वीर सावरकर ने 'हिन्दुत्व' में स्पष्ट लिखा है- ''यह सुनिश्चित है कि आज के विश्व में प्राचीन मिश्र तथा बैबीलॉन की प्राचीन सभ्यताएं सुविख्यात हैं। जब उनका नाम भी किसी ने नहीं सुना था तब भी पवित्र सिन्धु-सलिल की पावन कलकल ध्वनि के साथ अग्निहोत्र के यज्ञ- धूम्र की सुगन्ध प्रवाहित हुआ करती थी और यह महान् सिन्धु नदी तट वेदों के पावन घोष से गुंजित होता था, जिससे आर्य जनों के अन्त:करण में आध्यात्मिकता की पुनीत ज्योति प्रज्वलित होती थी।''

भारतीय ही नहीं, कई पाश्चात्य विद्वान भी भारत को ही आर्यों की मूल भूमि मानते हैं। १९७५ में ऑक्सफोर्ड में छपी पुस्तक 'द अर्ली आर्यन' में टी बुरो ने स्पष्ट किया है- "The Aryan invasion of India is mentioned is no recorded document and it can't be traced archeologically."

अमेरिका इतिहास वेत्ता डा. मिल्टन सिंगर कहते हैं- ''आर्य एवं द्रविड़ों के युद्ध का कोई वैज्ञानिक आधार नजर नहीं आया।'' - (द. हिन्दु, मद्रास)

एक और इतिहासकार एलफिन्स्टन ने ''हिस्ट्री ऑफ इन्डिया'' पुस्तक में लिखा है- ''वेद में, मनुस्मुति में अथवा अन्य किसी पौराणिक संस्कृत ग्रन्थ में आर्यों को भारत के अलावा और किसी देश का निवासी नहीं बताया गया है।''

भारत में अंग्रेजों ने अपना साम्राज्य सुदृढ़ करने हेतु उन्होने यहां के स्वर्णिम इतिहास, महान धार्मिक ग्रन्थों, सभ्यता-संस्कृति व प्राचीन शिक्षा पद्धति को नष्ट भ्रष्ट करने का भरपूर प्रयास किया। इस कार्य में मैक्डॉनल्ड, मैक्समूलर तथा मैकॉले जैसे विद्वानों ने अपनी अहं भूमिका निभाई। उन्होंने यहां के गौरवशाली इतिहास को बदलने का भरसक प्रयास किया और वे इस कुकृत्य में सफल भी हुए।

किन्तु कहावत है कि सुबह का भूला यदि शाम को घर वापस आ जाए तो भी वह भूला नही कहलाता आज आजादी के ६६ वर्षों के बाद भी यदि हमारी सरकार गलत इतिहास को सुधारने का नेक कार्य करने का कृत्संकल्प करती है तो भी वह बधाई की पात्र है। इससे हमारा खोया हुआ स्वर्णिम इतिहास पुनर्जीवित होगा और हमारा सोया हुआ स्वाभिमान पुन: जागृत होगा।

संदीप आर्य

मन्त्री- वैदिक मिशन मुम्बई

आत्म विशुद्धि द्वारा सर्वविधैश्वर्य-प्राप्ति

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ।।

ऋषि:- **तिरश्ची**।। देवता-**इन्द्र:**।। छन्द:- **अनुष्टुप्** ।।

विनय- हे आत्मन् ! तुम परमैश्वर्यवाले हो । तुम हमें सब प्रकार का ऐश्वर्य दे सकते हो। हम यूँ ही बाहर भटकते हैं, बाहर की वस्तुओं का आसरा देखते हैं, जबकि सब अनिष्टों को हटा सकने वाले और सब अभीष्टों के दे सकने वाले, हे मेरें आत्मन् ! तुम हमारे अन्दर विद्यमान हो, फिर भी, हममें तुम्हारी जो यह शक्ति अभी प्रकट नहीं होती है, इसका कारण यह है कि हमने अपने अन्दर तुम्हें शुद्ध नहीं किया है, हमने आत्म-विशुद्धि प्राप्त नहीं की है। जिनका आत्मा शुद्ध हो जाता है, जो तपश्चर्या द्वारा व निष्काम कर्म की साधना द्वारा या पवित्र सामोपासना द्वारा अपने राग-द्वेष की मलिनताओं को, नानाविध विषय-वासनाओं की अशुद्धि को और अज्ञान-मल को हटाकर आत्मा को विशुद्ध कर लेते हैं, वे आत्माराम हो जाते हैं। वे अपनी विशुद्धात्मा को पाकर फिर अन्य किसी भी बाह्य वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते। तब वे अपनी विशुद्ध आत्मा से जो कुछ माँगते हैं वह सब-कुछ उन्हें मिल जाता है, मिलता रहता है। नि:सन्देह हे आत्मन्! तुम शुद्ध हुए हमें सर्वविध ऐश्वर्य दिया करते हो। संसार में जो दानशील, स्वार्थ-त्यागी, उदार पुरुषों को सब रमणीय धन मिल रहे हैं, जो अस्तेय व्रतियों को 'सर्वरत्नोपस्थान' हो रहा है यह सब, हे विशुद्ध आत्मन्! तुम्हारा ही दान है, तुम्हारी ही विशुद्धता का प्रताप है। विशुद्ध हुए तुम तो सब विघ्न-बाधाओं को भी मार भगाते हो, सब पापों का नाश कर देते हो, सब वृत्रों का हनन कर देते हो, सब रुकावटों को दूर कर देते हो और अन्त में, हे शुद्ध इन्द्र! तुम हमें सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य को, 'वाज' को भी देते हो। इसलिए भाइयो! आओ, अब जब कभी हम अनैश्वर्य से पीड़ित हों या रमणीय धनों को प्राप्त करना चाहें तो हम अपनी आत्मा को शुद्ध करने में लग जाएँ; जब कभी वृत्र के प्रहारों से आक्रान्त हों तो इस आत्म विशुद्धि के हथियार को पकड़ लेवें और जब कभी सर्वोच्च ज्ञानबल की आवश्यकता अनुभव करें तो भी आत्मशुद्धि की ही शरण में जाएँ, आत्मशुद्धि का ही आश्रय ग्रहण करें।

शब्दार्थ-इन्द्र- हे आत्मन् ! **शुद्ध : हि**-शुद्ध हुए ही तुम न:=हमें **रयिम्**=ऐश्वर्य देते हो, **शुद्ध**=हुए-हुए तुम **दाशुषे**=दानशील के लिए **रत्नानि**=रत्नों को, रमणीय धनों को देते हो। **शुद्ध**= शुद्ध हुए-हुए तुम **वृत्राणि**=वृत्रों को, पापों को, बाधाओं को **जिघ्नसे**=हनन करते हो और शुद्ध:=**शुद्ध** हुए-हुए तुम **वाजम्**= ज्ञान-बल को **सिषाससि**=देना चाहते हो, देते हो।

साभार-वैदिक विषय

thearyasamaj.org

योगासन व्यायाम

विजय चितौरी

यहां हम कुछ प्रमुख योगासनों का परिचय दे रहे हैं-

सर्वांगासन :

विधि : पीठ के बल लेट जाएं, पैरों को आपस में मिलाकर रखें, भुजाएं शरीर के बगल में, धीरे-धीरे दोनों पैरों को ऊपर उठाकर ९० अंश पर ले जाएं। दोनों हाथों से कमर को सहारा देकर उठाएं इस स्थिति में थोड़ी देर रुकें। फिर अपनी पूर्व स्थिति में वापस आ जाएं।

लाभ : उदर के अवयवों- आमाशय, यकृत्, अग्न्याशय आदि पर प्रभाव, कब्ज के लिए उत्तम आसन, मोटापा कम करता है, मासिक धर्म की गड़बड़ी को ठीक करता है।

निषेध : उच्च रक्तचाप, सर्वाइकल स्पाण्डि- लाइटिस, हृदय-रोग में यह आसन नहीं करना चाहिए।

पवनमुक्तासन :

विधि- पीठ के बल लेट जाएं, पैर एक दूसरे से मिला लें, हाथ शरीर की बगल में । दोनों पैरों को एक साथ धीरे-धीरे ऊपर उठाएं, दोनों घुटनों को मोड़ते हुए, श्वास छोड़ते हुए, घुटनों पर माथा लगाने की चेष्टा करें। फिर श्वास लेते हुए दोनों हाथों की कैंची खोलते हुए पैरों को सीधा करें। इस प्रकार ३ से ५ बार करें।

लाभ- पाचन-संस्थान को सबल बनाता है। पेट कम करता है। रुकी हुई वायु को निकालता है। महिलाओं की मासिक धर्म अनियमिताओं को कम करता है।

उत्तानपादासन :

विधि- पीठ के बल सीधे लेट जाएं, पैरों को आपस में सटाकर रखें, भुजाएं शरीर के बगल में। अब पैरों को धीरे- धीरे ऊपर उठाएं, पृथ्वी से ६० अंश का कोण बनाएं। इस स्थिति में कुछ समय रुके। फिर धीरे-धीरे वापस आएं। सामान्य श्वसन लेते रहें।

लाभ- नाभि पर अच्छा प्रभाव, पेट तथा कमर की चर्बी कम होती है आमाशय, यकृत्, अग्न्याशय, आतों पर अच्छा प्रभाव, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों को सक्रिय बनाता है। कमर के दर्द में लाभ होता है।

पश्चिमोत्तानासन :

विधि- बैठकर दोनों पैरों को समाने फैलाएं, दोनों हाथों को श्वास लेते हुए ऊपर उठाएं, श्वास छोड़ते हुए दोनों पैरों के अंगूठों को पकड़े और घुटनों को बिना मोड़े हुए, माथे से छूने का प्रयास करें। श्वास लेते हुए वापस प्रारम्भ की स्थिति में आ जाएं।

लाभ- कब्ज, गैस, मोटापा, मधुमेह, अनियमित मासिक धर्म में लाभकारी प्रभाव, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों को नियन्त्रित करता है, पेट कम करता है।

निषेध: कमर दर्द के रोगी न करें।

भुजंगासन : उल्टे लेटकर पैरों को आपस में मिला लें। हथेलियों को सीने की बगल में सटाकर रखें। गहरी सांस लेते हुए नाभि तक का हिस्सा हाथों के बल उठाएं, यहां थोड़ी देर रुकें, फिर श्वास छोड़ते हुए धीरे धीरे वापस आए।

लाभ- मोटापा कम, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों पर प्रभाव, रीढ़ का लचीलापन, कब्ज, गैस, पाचन-शक्ति प्रभावित मासिक धर्म के कष्ट ठीक होते हैं।

सेतुबन्धासन :

विधि- हाथों के सहारे पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठ जाएं, अब शरीर को ऊपर उठाते हुए सिर को, कन्धों को एक ओर पञ्जों को दूसरी ओर जमीन पर रखें, शरीर को ऊपर उठाने में हाथ का सहारा दें, पैर तथा एड़ियाँ जमीन से चिपकी रहेंगी। वापस आएं, ऐसा पांच बार करें, शरीर को उठाते समय श्वास रोके, वापस आते समय श्वास बाहर छोड़े।

लाभ- यह आसन मेरूदण्ड, पैर की मांसपेशियों और उदर को लाभ पहुंचाता है।

चक्रासन

विधि- पीठ के बल लेट जाएं, घुटने मुड़े हों व एड़ियां नितम्बों से छूती हुई हों। दोनों पैरों के करीब एक फुट का अन्तर हाथों को कोहनियों से सीधी करते हुए हथेलियों को कन्धों के पास सटाकर रखें। अब श्वास भरते हुए मध्य शरीर को ऊपर उठाएं। घुटने समकोण की स्थिति में रहेंगे। शरीर को ऊपर की ओर खीचें। धीरे-धीरे वापस आएं।

लाभ- उदर के सभी अंगों के लिए लाभप्रद, पेट तथा पीठ की मांसपेशियों के लिए हितकर ।

धनुरासन

विधि- पेट के बल लेटते हुए पैरों को घुटनों से मोड़े, दोनों हाथों से दोनों पैरों के टखनों को शक्ति से पकड़कर, श्वास लेते हुए सीने को ऊपर तथा पैरों को खींचें। केवल पेट का हिस्सा जमीन पर सटाकर रखें । श्वास छोड़ते हुए वापस आएं।

निषेध- हृदय रोग, रक्तचाप, हर्निया रोगों में यह आसन न करें।

वज्रासन

विधि- दोनों पैरों को सामने फैलाते हुए बैठ दाएं नितम्बर की ओर ले दाएं तथा बाएं पैर को बाएं नितम्ब की ओर। दोनों हाथों को घुटनों पर रखें, रीढ़ सीधी रखें। श्वास सामान्य रहे।

लाभ- पाचन-शक्ति और उदर रोगों में लाभ होता है। यह आसन भोजन के बाद कर सकते हैं। इस से आमाशय में रखा भोजन आसानी से हजम होता है।

thearyasamaj.org

नवम उपदेश

(इतिहास-विषयक)

महर्षि दयानन्द

(रविवार ता. २५ जुलाई १८७५। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विज्ञापन के अनुसार बुधवार पेठ में भिड़े के बाड़े में ता. २५ माह जुलाई के दिन रात्रि में आठ बजे व्याख्यान दिया, उसका सारांश)

'इक्ष्वाकु' यह आर्यावर्त का प्रथम राजा हुआ। इक्ष्याकु की ब्रह्मा से छठी पीढ़ी है। पीढ़ी शब्द का अर्थ बाप से बेटा यही न समझें, किन्तु एक अधिकारी से दूसरा अधिकारी ऐसा जाने, पहला अधिकारी स्वायम्भुव (मनु) था। इक्ष्वाकु के समय में लोग अक्षर स्याही आदि लिखने की रीति को प्रचार में लाये, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इक्ष्वाकु के समय में वेद को बिल्कुल कण्ठस्थ करने की रीति कुछ-कुछ बन्द होने लगी। जिस लिपि में वेद लिखे जाते थे, उसका नाम देवनागरी ऐसा है, कारण देव अर्थात् विद्वान् इनका जो नगर ऐसे विद्वान् नागर लोगों ने अक्षर द्वारा अर्थ-संकेत उत्पन्न करके ग्रन्थ लिखने का प्रचार प्रथम प्रारम्भ किया।

ब्रह्मा की उत्पति तक दिव्य सृष्टि थी, पश्चात् मैथुनी सृष्टि उत्पन्न हुई, उससे विराट् हुआ और विराट् के पीछे मनु ने धर्म-व्यवस्था बनाई। मनु के दस पुत्र थे, उनमें स्वायम्भुव के समय में राजकीय और सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रारम्भ हुई।

इक्ष्वाकु राजा हुआ तो वह इससे नहीं कि राजकुल में वह उत्पन्न हुआ था, अथवा उसने बलात्कार से राज्य उत्पन्न किया हो, किन्तु सारे लोगों ने उसे उसकी योग्यतानुकूल राजा-सभा में अध्यक्ष स्थान पर बैठाया। उस समय सारे लोग वैदिक व्यवस्थानुकूल चलते थे। भृगुजी ने अपनी संहिता में यह सब व्यवस्था प्रकट की है और यह ग्रन्थ श्लोकात्मक है। इससे श्लोक बनाने का आरम्भ वाल्मीकि जी ने किया, यह कहना कितना सयुक्तिक है, सो देखो। इस व्यवस्था के सम्बन्ध से मनु के सातवें, आठवें वा नवें अध्यायों में जो राज्यों की व्यवस्था बतलाई है उसे देखो। केवल अकेले राजा ही के हाथ में किसी प्रकार का हुक्म चलाने की शक्ति न थी, वह तो केवल राजसभा में अध्यक्ष का अधिकार चलाता रहता।

राज्य की व्यवस्था कैसी होती थी, उसे संक्षेप से इस स्थल पर कहता हूँ-ग्राम, महाग्राम, नगर, पुरे, ऐसे-ऐसे देश विभाग रहते थे। ग्रामों में सौ-सौ घर, महाग्रामों में हजार, नगर में दस हज़ार और पुर में इससे भी अधिक घरों की संख्या रहती थी। दश ग्राम पर एक दशेश नाम का अधिकारी होता था, सौ ग्रामों पर शतेश नाम का अधिकारी रहता था, और सहस्र ग्रामों पर सहस्त्रेश नाम का अधिकारी होता था। दस सहस्त्रों पर महासुशील नीतिमान् ऐसा ही एक अधिकारी रहता था। लिखने- पढ़ने के कामों में अनुभवशील ऐसे सब देशों में दूत गुप्त बातनियाँ (खबरें) पहुँचाने के लिए तथा अधिकारी लोग कैसा अधिकार चलाते हैं, इसका शोध रखने के लिए चारों ओर फिरते थे, और यह दूतों का काम पुरूष या स्त्रियाँ करती थीं।

राज्य में चार प्रकार के अधिकारी होते थे- राज्याधिकारी, सेनाधिकारी, न्यायाधिकारी, और कोषाधिकारी। ऐसे चार महकमे के चार अधिकारी रहते थे। इक्ष्वाकु राजसभा का प्रथम अध्यक्ष था। यदि सभा के विचार में दो पक्ष आ पड़ते तो उस स्थल पर निर्णय करने का काम अध्यक्ष का था। देश में भिन्न-भिन्न जाति (प्रकार) की सभाएँ थीं। उनमें राजार्य्य सभा ही मुख्य थी और धर्मसभाएँ, अर्थात् परिषद् भी स्थल-स्थल पर थीं। दश विद्वान् विराजे बिना परिषद् सभा नहीं होती थी और न्यून से न्यून तीन विद्वानों के आये बिना तो सभा का काम चलता ही नहीं था। धर्मसभा की ओर से किसी प्रकार का अधिकार न था, किन्तु उसमें धर्माधर्म का विवेचन और उपदेश ही होता था। परीक्षा और शिल्पोन्नति की ओर भी इस सभा का ध्यान रहता था, न्यूनाधिक के विषय में राजार्य सभा को विदित करके राजार्य सभा की ओर से दण्डादिक की व्यवस्था होती थी। महाभारतान्तर्गत सभापर्व में भिन्न-भिन्न सभाओं का वर्णन किया हुआ है, उसे देखो। सेना के सिपाही लोगों को आज्ञा मानना ही मुख्य कर्तव्य कर्म है, ऐसा बतलाकर उन्हें धनुर्वेद सिखाते थे। आर्य लोगों को 'कवायद क्या है' यह विदित न था, ऐसा बहुत से अंग्रेजी पढ़े हुए लोग कहते हैं, परन्तु यह कहना पागलपने का है, क्योंकि मकरव्यूह, बकव्यूह, बलाकाव्यूह, सूचीव्यूह, शूकरव्यूह, शकटव्यूह, चक्रव्यूह इत्यादि कवायद के नाना प्रकार प्राचीन काल में आर्य लोगों को विदित थे और सैन्य में भी भिन्न टोलियों पर दशेश, शतेश, सहस्त्रेश ऐसे अधिकारी रहते थे और उस समय के उनके हथियार अर्थात् शक्ति, असि, शतघ्नी, भुशुण्डी आदि होते थे। अंग्रेज लोगों में अब तक व्यूह रचना का पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ है, अर्थात् वे नहीं जानते कि व्यूह-रचना किसे कहते हैं, ऐसा तुम्हें प्रतीत होने लगा है। सारांश **'निरस्तपादपे देश एरण्डोऽपि द्रुमायते'** यह कहावत सत्य है।

इससे अंग्रेजों में हमारी अपेक्षा विशेष गुण नहीं हैं, ऐसा मेरा कहना नहीं है, किन्तु उनमें भी बहुत-से अच्छे गुण हैं सो उनके गुणों को हम स्वीकार करें, यही हमें योग्य है। पहले समय में जो कोई युद्ध में मरता तो उसके लड़के-बालों को वेतन मिला करता था और युद्धप्रसंग में जो लूट मिलती तो उसे नियत समय पर व्यवस्था से बाँट दिया करते थे। सैन्य की योग्य व्यवस्था के सम्बन्ध से उस समय बहुतेरे कार्यों की ओर ध्यान दिया करते और समस्त ऐश्वर्य की मूल कारण सेना है यह जानकर सेना में लोगों को किसी प्रकार की चिन्ता वा कष्ट नहीं होने देते थे, इस विषय में अधिकारी लोग उस समय बहुत ही दक्ष होते थे। यदि सेना में कोई बीमार पड़ता तो उसकी विशेष चिन्ता की जाती थी, अर्थात् उत्तम रक्षा होती थी।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्य: प्राकृतो जन:।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्य: सहस्त्रमिति धारणा।।

श्रेष्ठ पुरुषों को और राजा को गरीबों की अपेक्षा शतपट (सौगुना) दण्ड अधिक दिया जाता और राजा लोग मुनि लोगों के साथ धर्मवाद करने में समय लगाते थे, इस विषय में पिप्पलाद मुनि की कथा देखो[२]। इस प्रकार इक्ष्वाकु के समय में राज्य-व्यवस्था थी। इक्ष्वाकु राजा इस प्रकार का सुशील, नीतिमान्, सुज्ञ, जितेन्द्रिय, विद्वान् और गुणसम्पन्न राजा था।

बहुत-सी पीढ़ियों के पश्चात् सगर राजा राज्य करने लगा। उस समय राजा लोग यदि मूर्ख होते तो उन्हें अधिकार से दूर कर देते थे अथवा अधिकार ही न देते थे।

इस समय हमारे राजा लोगों को खुशामदियों की चण्डाल-चौकड़ी न

(शेष पृष्ठ १० देखें)

thearyasamaj.org

ईश्वर सर्व-व्यापक है

बादशाह अकबर की बात सुनाता हूँ। बीरबल का नाम तो आप जानते हैं, बहुत विद्वान् थे वह। अकबर के साथ रहते थे। स्वयं तो ईश्वर को याद करते ही थे, कई बार बादशाह को भी कहते थे- ''ईश्वर को याद करो!''

एक दिन बादशाह ने कहा- ''अच्छा बीरबल! तुम जो कहते हो ईश्वर को याद करूँ तो बताओ कि ईश्वर कहाँ रहता है? कैसे दर्शन हो सकते हैं और वह क्या करता है?''

एक-साथ तीन प्रश्न पूछ लिये उसने। तीनों बहुत कठिन। बीरबल चिन्ता में डूब गया; बोला-''सात दिनों का अवकाश दो। आपके सवालों का उत्तर सातवें दिन दूँगा।''

परन्तु उत्तर देना कहाँ सरल है! छः दिन बीत गए। बीरबल को उत्तर नहीं सूझा। सातवें दिन चिन्ता में डूबा बैठा था वह। बीरबल को उत्तर नहीं सूझा। सातवें दिन चिन्ता में डूबा बैठा था वह। तभी उसके नन्हे बेटे ने आकर कहा- ''पिताजी! आप चिन्ता में क्यों है?''

बीरबल ने कहा- ''बादशाह ने तीन प्रश्न पूछे हैं। उनका उत्तर नहीं मिलता।'' प्रश्न भी बता दिये उसको।

नन्हा-सा बालक बोला-''वाह! इतनी-सी बात की चिन्ता है आपको? इनके उत्तर तो मैं बता सकता हूँ।''

बीरबल ने कहा- ''बताओ!''

बेटे ने कहा- ''आपको नहीं, बादशाह को बताऊँगा। मुझे उनके पास ले चलो।''

बीरबल अपने बेटे को लेकर बादशाह के पास पहुँच गया, बोला- ''श्रीमन्! आपके सवालों का उत्तर यह नन्हा बालक देगा।''

बादशाह ने आश्चर्य से बालक की ओर देखा; बोले-''इतने कठिन प्रश्न और उत्तर देगा यह बालक?'' फिर बोले- ''अच्छा बच्चे, बताओ, हमारे प्रश्नों का उत्तर क्या है?''

बालक ने कहा- ''बादशाह! तुम भारत में नये आये हो, भारत की संस्कृति को जानते नहीं। भारत की संस्कृति यह है कि जब कोई आदमी मिलने के लिए आये तो पहले खिला-पिलाकर उसका सत्कार करो, बाद में उससे बात करो। एकदम से उत्तर पूछने का रिवाज भारत का नहीं है।''

बादशाह ने झेंपकर कहा- ''अच्छा बोलो, तुम क्या खाओगे'' बच्चे ने कहा- ''मैं तो छोटा-सा बालक हूँ। मुझे दूध ही अच्छा लगता है।''

बादशाह ने कटोरे में दूध मँगवाया। दूध आ गया। बच्चे को देकर कहा-''पियो बच्चे!''

बालक ने कटोरे को लेकर उसके अन्दर झाँका, इधर-उधर-उधर से उसको देखा, फिर अँगुली डालकर उसमें कोई वस्तु ढूँढने लगा।

बादशाह ने कहा- ''यह क्या करते हो बालक? दूध को पीते क्यों नहीं?

बच्चे ने कहा- ''बादशाह, मैने सुना है कि दूध में मक्खन होता है, परन्तु इस दूध में तो मक्खन दिखाई नहीं देता?''

बादशाह ने हँसकर कहा- ''तुम अभी बच्चे हो! अरे, मक्खन इसके अन्दर अवश्य है। उसे देखना है तो दूध को दही में डालकर जमाना पड़ता है। दही बन जाय, तो इसमें मथनी डालकर मथना पड़ता है; बिलोना पड़ता है। जब बहुत ज़ोर से बिलोया जाता है, तब मक्खन ऊपर आता है।''

बच्चे ने कहा-''तो सुनो बादशाह! तुम्हारे पहले दो सवालों का जवाब यही है। ईश्वर है सब जगह। इस संसार के कण-कण में रहता है वह, परन्तु उसके दर्शन तब होते है, जब मन को ओ३म् के जाप का दही डालकर जमाया जाता है। फिर धारणा, ध्यान और समाधि की मथनी से बिलोया जाता है। तब भक्त अपने हृदय में भगवान् को अपने समक्ष देखता है, स्पष्ट रूप से देखता है। तब भगवान् के दर्शन होते हैं, निश्चित रूप से होते हैं।''

बादशाह ने कहा-''वाह रे बालक! मेरे दो प्रश्नों का उत्तर दे दिया तुमने। मेरा सन्देह दूर हो गया। अब बताओ, यह ईश्वर क्या करता है?''

बच्चे ने कहा-''यह बात गुरु बनकर पूछते हो या शिष्य बनकर?''

बादशाह ने कहा- ''गुरु बनकर कोई नहीं पूछता, मैं शिष्य बनकर पूछता हूँ।''

बच्चे ने कहा- ''अद्‌भुत शिष्य हो तुम! गुरु तो नीचे पृथिवी पर खड़ा है और तुम ऊपर तख्त पर विराजमान हो?''

बादशाह लज्जित होकर जल्दी से नीचे उत्तर आया। बच्चे को तख्त पर बैठा दिया। हाथ जोड़कर बोला- ''अब बताओ, ईश्वर क्या करता है?''

बच्चे ने हँसकर कहा- ''यही करता है। ऊपरवाले को नीचे और नीचेवाले को ऊपर।''

और यह खेल क्या हमने अपनी आँखों से नहीं देखा? मैने बड़े-बड़े राजा और महाराजाओं को बम्बई की गलियों में खाक छानते हुए देखा है। उन लोगों को, जो कुछ वर्ष पूर्व जेलों में बन्दी थे, ताज और तख्त सँभालते, शासन करते देखा है। उस भगवान् की महिमा महान् है। कौन उसका वर्णन कर सकता है! जब सब लोग छोड़ जाते हैं, जब सभी आशाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब भी वह मनुष्य के साथ रहता है, तब भी उसकी रक्षा करता है।

तेरी बेमिस्ल कुदरत का हरइक पत्ते में दफ्तर है।
तेरा देखा है सिक्का सब्त हमने दाने-दाने में।।

बोध कथाएं से साभार

thearyasamaj.org

डा. सत्यदेव निगमालंकार

परलोक विजयी कौन? –

धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरूवर्तिना।

भवितव्यं नरव्याघ्र परलोक जिगीषता।। अयो० १०५,४४

नरश्रेष्ठ! परलोक पर विजय पाने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को धार्मिक, क्रूरता से रहित और गुरुजनों का आज्ञापालक होना चाहिये।।

आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभ।। अयो०१०५,४५

नरश्रेष्ठ! तुम अपने धार्मिक स्वभाव के द्वारा आत्मा की उन्नति के लिये प्रयत्न करो।।

पराक्रम –

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते।

तस्य विक्रमकालांस्तान् युक्तानाहुर्मनीषिणः।। यु० ९,८

हे तात! जो मनोरथ साम, दाम और भेद-इन तीनों उपायों से प्राप्त न हो सके, उसी की प्राप्ति के लिए नीतिशास्त्र के ज्ञाता मनीषी विद्वानों ने पराक्रम करने योग्य अवसर बताये हैं।

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च।

विक्रमास्तात सिद्धयन्ति परीक्ष्य विविना कृताः।। यु० ९,९

तात! जो शत्रु असावधान हों, जिन पर दूसरे-दूसरे शत्रुओं ने आक्रमण किया हो तथा जो महारोग आदि से ग्रस्त होने के कारण दैव से मारे गए हों, उन्हीं पर भली-भाँति परीक्षा करके विधिपूर्वक किए गये पराक्रम सफल होते हैं।।

परिपृच्छा–

शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ।। सु० २१,३१

क्या कुत्ता कभी दो-दो बाघों के सामने टिक सकता है।।

पापकर्म –

अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च।

क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव।। यु० १२,३१

जो कर्म उचित उपाय का अवलम्बन किये बिना ही किये जाते हैं। तथा जो लोक और शास्त्र के विपरीत होते हैं, वे पापकर्म उसी तरह दोष की प्राप्ति कराते हैं, जैसे अपवित्र आभिचारिक यज्ञों में होमे गये हविष्य।।

न चिरात् प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।

सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर।। अर० २९,९

निशाचर ! जैसे खाये हुए विषमिश्रित अन्न का परिणाम तुरंत ही भोगना पड़ता है, उसी प्रकार लोक में किये गये पापकर्मों का फल शीघ्र ही प्राप्त होता है।।

पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना।

तस्मादात्मापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति।। उ० १५,२४

पाप का फल केवल दुःख है और उसे स्वयं ही यहाँ भोगना पडता है, इसलिए जो मूढ़ पाप करेगा वह मानो स्वयं ही अपना वध कर लेगा।।

पारलौकिक हित साधन में कारण –

ननु वीर्यमकारणम्।। अयो. ५३,२५

पारलौकिक हितसाधन में बल-पराक्रम कारण नहीं होता है।।

पापियों के साथ रहने से हानि –

बहवःसाधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः।

परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः।। अर० ३९,२१

लोक में बहुत से साधु-पुरुष, जो योगयुक्त होकर केवल धर्म के ही अनुष्ठान में लगे रहते थे, दूसरों के अपराध से ही परिकरों सहित नष्ट हो गये।।

पापीवध –

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन।

पापियों का वध करने में पाप नहीं है।

पिता –

पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्।। अयो० ३४,५२

तात! पिता देवताओं के भी देवता माने गये हैं।।

न ह्यतो धर्माचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।

यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।। अयो० का० १९,२२

पिता की सेवा अथवा उनकी आज्ञा का पालन करना, जैसा महत्त्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर संसार में दूसरा कोई धर्माचरण नहीं है।।

देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः।। अयो० २१,६०

श्रीराम लक्ष्मण को समझाते हुए रहे हैं (हमारे पिता) माता जी के तो पति, गति तथा धर्म हैं।।

यतो मूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः।

कथं तस्मिन् न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते।। अयो० १८,१६

मनुष्य जिसके कारण इस जगत् में अपना प्रादुर्भाव (जन्म) देखता है, उस प्रत्यक्ष देवता पिता के जीतेजी वह उसके अनुकूल वर्ताव क्यों न करेगा?

पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः।। अयो० २१,४९

पिता की आज्ञा में रहना ही सनातन धर्म है।।

सः हि धर्मः सनातनः ।। अयो० १९,२६

(पिता की सेवा करना ही) सनातन धर्म है।।

पिता और माता में गौरव बुद्धि –

यावत् पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते।

तावद् धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम्।। अयो० १०१,२१

धर्मज्ञ ! धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भरत! मनुष्य की विश्ववन्द्य पिता में जितनी गौरव बुद्धि होती है, उतनी ही माता में भी होनी चाहिये।।

पिता की आज्ञा –

पितुर्हि वचनं कुर्वन् कश्चिन्नाम हीयते।। अयो० २१,३७

राम का कथन है- पिता की आज्ञा का पालन करने वाला कोई भी पुरुष धर्म से भ्रष्ट नहीं होता।।

पुत्र –

नास्ति पुत्रसमः प्रियः ।। अयो० ७४,२४

पुत्र के समान प्रिय दूसरा कोई नहीं है।।

thearyasamaj.org

राज्ये पुत्रः प्रतिष्ठाप्यः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।। कि० ५३,८

अपना पुत्र गुणवान् हो या गुणहीन, उसी को राज्य पर बिठाना चाहिये।।

निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद् विनिवासनम्।। अयो० ३३,११

पुत्र यदि गुणहीन हो, तो भी उसे घर से निकाल देने का साहस कैसे हो सकता है?।।

विनात्मजेनात्मवतां कुतो रतिः।। अयो० १२,११

आत्मज्ञ पुरुषों को अपने पुत्र से बिछोह हो जाने पर कैसे चैन मिल सकती है?

देवकल्पमृजुं दान्तं रिपुणामपि वत्सलम्।।

अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत् पुत्रमकारणात्।। अयो० २१,६

धर्म पर दृष्टि रखने वाला कौन पिता ऐसा होगा, जो देवता के समान शुद्ध, सरल, जितेन्द्रिय और शत्रुओं पर भी स्नेह रखने वाले पुत्र का अकारण परित्याग करेगा?।।

पुत्र और भाई–

कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि।

भ्राता वा भ्रातरं हन्यात् सौमित्रे प्राणमात्मनः।। अयो० ९७,१६

सुमित्रानन्दन! कितनी ही बड़ी आपत्ति क्यों न आ जाय, पुत्र अपने पिता को कैसे मार सकते हैं? अथवा भाई अपने प्राणों के समान प्रिय भाई की हत्या कैसे कर सकता है?।।

पुत्र का धर्म–

एष धर्मश्च सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता।। अयो० ३०,३२

राम का सीता के प्रति कथन है– सुश्रोणि! पिता और माता की आज्ञा के अधीन रहना पुत्र का धर्म है।।

अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते।

स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम् ।। अयो० ३०,३३

जो अपनी सेवा के अधीन हैं, उन प्रत्यक्ष देवता माता, पिता और गुरू का उल्लङ्घन करके जो सेवा के अधीन नहीं है, उस अप्रत्यक्ष देवता दैव की विभिन्न प्रकार से किस तरह आराधना की जा सकती है।।

यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि।

नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराधते।। अयो. ३०,३४

सुन्दर नेत्र प्रान्त वाली सीते! जिनकी आराधना करने पर धर्म, अर्थ और काम तीनों प्राप्त होते हैं, तथा तीनों लोकों की आराधना सम्पन्न हो जाती है, उन माता, पिता और गुरु के समान दूसरा कोई पवित्र देवता इस भूतल पर नहीं है। इसीलिये भूतल के निवासी इन तीनों देवताओं की आराधना करते हैं।।

न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणाः।

तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता।। अयो० ३०,३५

सीते! पिता की सेवा करना कल्याण की प्राप्ति का जैसा प्रबल साधन माना गया है, वैसा न सत्य है, न दान है, न मान है और न पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञ ही हैं।।

पुत्रों की अभिलाषा–

एष्टव्या बहवः पुत्राः गुणवन्तो बहुश्रुताः।। अयो० १०७,१३

बहुत से गुणवान् और बहुश्रुत पुत्रों की इच्छा करनी चाहिये।।

(पृष्ठ-७ से नवम उपदेश)

घेरा है। इस कारण सहज ही राजाओं में सारे दुर्गुण वास करते हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है? बस, सारांश इतना ही है कि यह हमारे आर्यावर्त्त का दुर्दैव है।

बहव : पुरूषा राजन् सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।। (महाभारते)

सगर राजा सुशील और नीतिमान् था। इस राजा का मूर्ख और दुष्ट असमंज नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने एक गरीब के बालक को पानी में फेंक दिया। इसकी प्रार्थना का न्याय-राजार्यसभा के सम्मुख होने पर राजा ने उसे शासन किया और उसे एक महाभयंकर जङ्गल के बीच कैद कर रक्खा इसी का नाम न्याय है।

समरथ को नहीं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं।।

बस, इस प्रकार की शिक्षा ने भारत को तबाह कर दिया। प्यारे आर्यगण! समर्थों को मूर्खों की अपेक्षा अधिक दोष लगता है, क्योंकि उसे समझ देखकर समर्थ किया है। वह भला बुरा पाप-पुण्य सब जान सकता है। तात्पर्य है कि ऐसे गपोड़ो को न मानकर अपने धर्मानुरागी पूर्वजों का धर्मशिक्षानुकूल बर्त्ताव रखें, इसी में कल्याण है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

उपदेश मंञ्जरी से साभार

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ का ७१ वाँ स्थापना दिवस एवं पुरस्कार समारोह

रविवार दि. १९ अक्टूम्बर, २०१४ को आर्य समाज सान्ताक्रुज़ का ७१वाँ स्थापना दिवस एवं पुरस्कार समारोह आर्य समाज के विशाल सभागृह में मनाया गया। सर्वप्रथम ८.०० बजे से ९.०० बजे तक बृहद् यज्ञ पं. नामदेव आर्य के ब्रह्मत्व में किया गया । तदनन्तंर श्री चन्द्रगुप्त आर्य जी की अध्यक्षता में स्थापना दिवस एवं पुरस्कार समारोह आरम्भ हुआ। ९ से ११ बजे तक बाल सत्संग में **महर्षि दयानन्द सरस्वती से प्रेरणा** इस विषय पर अनेक बच्चों ने अपना वक्तव्य दिया। जिन्हे पुरस्कृत भी किया गया। डॉ. सोमदेव शास्त्री का प्रवचन हुआ।

स्व. झाऊलाला शर्मा गुरुकुल सहायता पुरस्कार प्राप्तकर्ता **आर्ष गुरुकुल गंगीरी (उ.प्र.)** से पुरस्कार स्वरूप रुपये १५००१/- की घोषणा की गयी, राशि गुरुकुल को भेज दी जायेगी।

श्रीमती भागीदेवी छाबरिया गुरूकुल सहायता पुरस्कार प्राप्तकर्ता **कन्या गुरूकुल हाथरस** से पुरस्कार स्वरूप रुपये १५००१/- की घोषणा की गयी, राशि गुरूकुल को भेज दी जायेगी।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक स्मृति पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता **आचार्य बृहस्पति (ओडिशा)** को पुरस्कार स्वरुप रु.१५००१/- की चेक, शाल, ट्राफी श्रीफल एवं मोती माला से सम्मानित किया गया। इस सम्मान के सुअवसर पर आचार्य बृहस्पति ने कहा कि आप लोगों ने मेरे कार्यो की सराहना हेतु यह पुरस्कार मुझे प्रदान किया है। जिसके लिये मैं आप सबका अत्यन्त आभारी हूँ।

श्री चन्द्रगुप्त आर्य प्रधान आर्य समाज सान्ताकुज़ एवं श्री लालचन्द आर्य प्रधान आर्य समाज सान्ताक्रुज़ ट्रस्ट, आर्य समाज सान्ताक्रुज़ की ओर से समस्त आगन्तुक विद्वानों एवं अतिथियों को शाल एवं श्रीफल देकर सम्मानित किया। समस्त कार्यक्रम का सन्चालन महामंत्री श्री संगीत आर्य ने किया। अंत में विद्वान, आगन्तुकों, श्रोताओं और कार्यकर्ताओं का हार्दिक आभार एवं धन्यवाद ज्ञापन किया गया। शान्ति पाठ एवं जयघोष हुआ। ऋषिलंगर के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

thearyasamaj.org

चाणक्य नीति दर्पण

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विमर्श- शील क्या है? महर्षि व्यास लिखते हैं-

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत्प्रशस्यते।।

- महा० शा० १२४।६६

मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी से द्रोह=वैर न करना, सबपर दया करना और दान देना - यह शील कहलाता है, जिसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ।।११।।

शब्दार्थ-माता वह माता **शत्रुः** शत्रु है और **पिता** पिता **वैरी** वैरी है **येन** जिसके द्वारा **बालकः** अपना बालक **न पाठितः** नहीं पढ़ाया गया। वह विद्याहीन बालक **सभामध्ये** विद्वानों की सभा में **न शोभते** वैसे ही तिरस्कृत और कुशोभित होता **है यथा** जैसे **हंस** हंसों के **मध्ये** मध्य में **बकः** बगुला।

भावार्थ- वे माता और पिता अपने सन्तानों के महाशत्रु हैं, जिन्होंने उनको उत्तम शिक्षा नहीं दिलाई, क्योंकि वे विद्याहीन बालक विद्वानों की सभा में ऐसे ही तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं, जैसे हंसों के मध्य में बगुला।

विशेष- महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह श्लोक 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वितीय समुल्लास में बाल शिक्षा विषय में उद्धृत किया है।

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत् ।।१२।।

शब्दार्थ- लालनात् दुलार करने से, लाड़ लड़ाने से पुत्रों में **बहवः** बहुत-से **दोषाः** दोष उत्पन्न होते हैं और **ताडनात्** ताड़ना करने, दण्ड देने से **बहवः** बहुत-से **गुणाः** गुण आते हैं, **तस्मात्** इसलिए **पुत्रम्** पुत्र **च** और पुत्रियों को **शिष्यम्** शिष्य **च** और शिष्याओं को **ताडयेत्** ताड़ना करता रहे, दण्ड देता रहे **लालयेत् तु न** लालन तो कभी न करे।

भावार्थ- लाड़-प्यार से बच्चों में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं और दण्ड देने से अनेक गुण उत्पन्न होते हैं, अतः पुत्र-पुत्रियों, शिष्य शिष्याओं का ताड़न करना चाहिए, लाड़ नहीं लड़ाना चाहिए।

विमर्श- महर्षि पतञ्जलि व्याकरण महाभाष्य में लिखते हैं-

सामृतैः पाणिनिर्घ्नन्ति गुरुवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रियणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।।

-महा० ८।१।८

लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषमुक्त और ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं। माता-पिता, अध्यापक लोग अमृतमय हाथों से ताड़न करते हैं, विषमय हाथों से नहीं। वे ईर्ष्या-द्वेष से ताड़न न करके ऊपर से भय प्रदान और अन्दर से कृपा दृष्टि रखते हैं।

इस विषय में कबीरजी ने भी ठीक ही कहा है-

गुरू कुम्हार शिष्य कुम्भ है गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
अन्दर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।।

श्लोकेन वा तदर्धेन पादेनैकाक्षरेण वा।
अबन्ध्यं दिवस कुर्याद् दानाध्ययनकर्मभिः ।।१३।।

शब्दार्थ- श्लोकेन एक श्लोक के अध्ययन, चिन्तन, मनन द्वारा **वा** अथवा **तत् + अर्धेन** आधे श्लोक द्वारा **वा** अथवा **पादेन** एक पाद, चौथाई श्लोक द्वारा अथवा **एक+अक्षरेण** एक अक्षर के द्वारा प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह **दान + अध्ययन + कर्मभिः** दान और अध्ययन आदि शुभकर्मों के द्वारा **दिवसम्** दिन को **अबन्ध्यम्** सार्थक **कुर्यात्** करे, दिन को व्यर्थ न जाने दे।

भावार्थ- मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन एक श्लोक (वेदमन्त्र) आधा श्लोक, एक पाद अथवा एक अक्षर का स्वाध्याय करे और दान-अध्ययन आदि शुभकर्मों को करता हुआ ही दिन को सफल बनाए, दिन को व्यर्थ न गँवाए।

विमर्श- दिन को सार्थक बनाने के सम्बन्ध में महात्मा विदुरजी ने लिखा है-

दिवसेनैव तत्कुर्याद् येन रात्री सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत्कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत्।।
पूर्वे वयसि तत्कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवने तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत् ।।

- विदुरनीति ३/६७-६८

मनुष्य को चाहिए कि दिन में ऐसा कार्य करे जिससे रात्रि में सुक्षपूर्वक रहे सुख की नींद सोये, किसी प्रकार की चिन्ता न रहे। इसी प्रकार वर्ष के आठ मासों में ऐसा प्रयत्न करे कि वर्षा-ऋतु में सुखपूर्वक रह सके। आयु के पूर्वार्द्ध में ऐसा कर्म करे जिससे वृद्धा-वस्था में सुखपूर्वक रहे और जीवन-भर ऐसे कर्म करे जिससे मरने के पश्चात् परलोक में सुख से रहे।

कान्तावियोगः स्वजनापमानः
ऋणस्य शेषं कुनृपस्य सेवा।
दरिद्रभावो विषमा सभा च
विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम् ।।१४।।

शब्दार्थ-कान्ता-वियोगः पत्नी का वियोग, **स्वजन-अपमानः** अपने बन्धु-बान्धवों द्वारा अनादर **ऋणस्या शेषं** ऋण, कर्ज का शेष रहना, **कुनृपस्य सेवा** दुष्ट राजा की सेवा, **दरिद्रभावः** दरिद्रता **च** और **विषमा-सभा** अविवेकियों, स्वार्थियों की सभा-**एते** ये सब **अग्निम् विना** अग्नि के बिना ही **कायम्** शरीर को **प्रदहन्ति** दग्ध करते हैं, जलाते हैं।

भावार्थ- कान्ता का विरह, अपने जनों से प्राप्त अनादर, बचा हुआ

thearyasamaj.org

ऋण, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और मूर्खों की सभा- ये सब अग्नि के बिना ही शरीर को जलाते हैं।

नदीतीरे च ये वृक्षा: परगेहेषु कामिनी।
मन्त्रिहीनाश्च राजान: शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम् ।।१५।।

शब्दार्थ-ये जो **वृक्षा:** वृक्ष नदी-तीरे नदी के किनारे पर होते हैं च और **परगेहेषु** दूसरे के घर में जाने या रहनेवाली **कामिनी** स्त्री **च** तथा **मन्त्रिहीना:** मन्त्रियों से रहित **राजान:** राजा लोग **शीघ्रम्** अति शीघ्र **नश्यन्ति** नष्ट हो जाते हैं **असंशयम्** इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

भावार्थ - नदी के किनारे पर उगे हुए वृक्ष, दूसरे के घर में जाने अथवा रहनेवाली स्त्री और मन्त्रियों से रहित राजा-ये सब निश्चय ही शीघ्र नष्ट हो जाते है।

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलं तथा।
वितं च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यिका ।।१६।।

शब्दार्थ- **विप्राणाम्** ब्राह्मणों का **बलम्** च और तेज **विद्या** विद्या है तथा और **राज्ञाम्** राजाओं का **बलम्** बल **च** और तेज **विद्या** विद्या है तथा और **राज्ञाम्** राजाओं का **बलम्** बल **सैन्यम्** सेना है, **वैश्यानाम्** वैश्यों का **बलम्** बल **वित्तम** धन **च** और गोपालन आदि है, **शूद्राणाम्** शूद्रों का बल **परिचयिका** सेवा है।

भावार्थ- ब्राह्मणों का बल तेज और विद्या है, राजाओं का बल सेना है, वैश्यों का बल धन और पशु-पालन है तथा शूद्रों का बल सेवा है।

विमर्श- महात्मा विदुर ने लिखा है-

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ।।

- विदुरनीति २।७५

दुष्ट पुरुषों का बल हिंसा होता है, राजाओं का बल दण्डविघान है, स्त्रियों का बल सेवा है और गुणीजनों का बल क्षमा है।

और देखिए-

दुर्बलस्य बलं राजा बालानां रोदनं बलम्।
बलं मूर्खस्य मौनित्यं चौराणामनूतं बलम्।।

- चाणक्यशतकम् १।८१

दुर्बलों का बल राजा होता है, बालकों का बल रोना है, मूर्खों का बल मौन रहना है और चोरों का बल झूठ बोलना है।

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत्।
खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चाऽभ्यागता गृहम् ।।१७।।

शब्दार्थ- **वेश्या** वाराङ्गना **निर्धनम् पुरुषम्** धनरहित मनुष्य को **प्रजा:** प्रजा **भग्नं नृपम्** पराजित अथवा शक्तिहीन राजा को त्यजेत् त्याग देती है। **खगा:** पक्षिगण **वीतफलम्** फलरहित **वृक्षम्** वृक्ष को **च और श्रभि-आगता:** अतिथि लोंग **भुक्त्वा** भोजन करके **गृहम्** घर को त्याग देते हैं।

भावार्थ - वेश्या निर्घन मनुष्य को, प्रजा पराजित राजा को, पक्षी फल रहित वृक्ष को और अतिथि भोजन करके घर को छोड़ देते हैं।

विचार शक्ति का चमत्कार

(सुखी-जीवन)

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्ता

प्रिय पाठकों,

सादर नमस्ते।

हम सभी के जीवन का उदेश्य सुख, शान्ति व ईश्वर का आनन्द प्राप्त करना। सुखो में आर्थिक सुख (धन-सम्पन्ता) स्वास्थ्य सुख (निरोग शरीर) संबंधो का सुख (माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, रिस्तेदार व मित्र) व सुष्म सुख (मान-सम्मान, यश कीर्ति) इत्यादि को प्राप्त करना है। लेकिन क्या हम इन सुखों को प्राप्त कर पाते हैं? आइए, विचार करे कि इन्हें पाने में क्या रूकावटे आती है।

चित्त में स्थिर विचार स्थाई सुख प्रदान करते हैं।

जब तक हमारे विचार स्थिर होते हैं, यकीन मानिये हमारे सारे सुख, सौभाग्य, एश्वर्य व वैभव भी हमारे पास बने रहेंगे। जैसे ही विचारों में भटकाव आता है वैसे ही यह सारी चीजें विलीन होने लगती है।

विचार शक्ति कुदरत की एक अनमोल देन है। हम जो चाहे वह अपने आप को प्रदान कर सकते हैं।

परिस्थितियों को अपना दास बनाएं।

अपने विचारो के अनुरुप अपनी परिस्थितियों का निर्माण करना आना चाहिए न कि परिस्थितीयों के हम गुलाम बन जाएं। जैसे दु:खो पर विजय पाते हुए हम वातावरण को सुखमय बना सकते है।

दूसरो के आंकलन को अपने सुख का आधार मत बनाइये।

कोई व्यक्ति यदि हमे भ्रष्टाचारी बताता है या अन्य कोई आरोप लगाता है तो हम भ्रष्टाचारी नहीं होते हुए भी दु:खी हो जाते है। हमारे व्यवहार दीन होते हुए भी यदि कोई हमारी प्रसंशा कर देता है तो हम फूले नहीं समाते। हमारे स्वं का अपनी स्वं की द्रष्टि मे सही आंकलन होना चाहिए जो कि दूसरो द्वारा प्रभावित न हो।

शर्तो पर आधारित सुख क्षणिक होता है। बिनाशर्त सुखी व भय दृष्टित रहीये।

यदि में शर्त रखुं कि मेरे पास एक लाख रुपया हो जाए तो मैं खुश रहुंगा नहीं तो रोता रहुंगा। एसा नहीं होना चाहिए। बिना शर्ते प्रसन्न रहीये, उसका कारण अपने आप खींचा चला आता है।

जो व्यक्ति एवं अपना ही शत्रु हो वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

यह बात गहरे चिंतन का विषय है। हम ही एसे विचार उत्पन्न कर देते है कि अच्छे खासे चलते जीवन में चित्त में मलीनता का बेंढते है। एसा नहीं होना चाहिए।

thearyasamaj.org

केरल में वेद की ज्योति जली

केरल में ही नहीं देश के दक्षिण भारतीय प्रान्तों की किसी भी भाषा में अब तक वेद का ऋषि भाष्य उपलब्ध नहीं था। केरल देश का प्रथम प्रांत है जिस की भाषा मलयालम में सम्पूर्ण यजुर्वेद (ऋषि भाष्य) का दो भागों में प्रकाशन सफलता पूर्ण संपन्न हो गया है तथा इस के विमोचन कार्य वहां के कालटी गाँव के विशाल सभागार में संपन्न हुआ। इस का प्रकाशन वेद विद्या प्रतिष्ठान ने किया जब कि इस भाष्य को सफलता पूर्वक तैयार करने का कार्य पंडित परमेश्वरम् नम्बूदरी जी ने किया, जिन का दहांत विगत वर्षों में हुआ किन्तु अपने परलोक गमन से पूर्व वह चार वेद का भाष्य मलयालम में कर गए। यह भाष्य उनकी ही मधुर स्मृति को सदा के लिए बनाए रखने के लिए केरल के एक मात्र आर्य सन्यासी स्वामी दर्शना नन्द जी ने संपादित किया। इस के लोकार्पण के अवसर पर स्वामी दयानंद पुरस्कार से आर्य जगत् विद्वान्, लेखक व शोधकर्ता प्र. राजेन्द्र जिज्ञासु जी को ५५५५५ रुपए की राशी, शाल व ताम्रपत्र के साथ दिया गया । वेद के लोकार्पण समारोह की भी कुछ विशेषताएं अपनी ही थी यथा :

इस कार्य क्रम के मुख्य अतिथि ए एस आर ओ (इसरो) के पूर्व अध्यक्ष डा. जी माधवन नायर ने अपने आशीर्वचन से सब को संबोधन दिया तथा कहा कि। वेद की प्राचीनता तथा आधुनिक समाज की आवश्यकता हमें दोनों को समन्वित करके चलना है। होशंगाबाद के गुरु कुल के कुलपति सामी ऋतस्पति जी ने अपने उद्‌बोधन में बोलते हुए कहा कि एक महिला के द्वारा एक महिला को वेद देकर केरल की जनता ने स्वामी दयानंद सरस्वती के सपनों को साकार किया है।

इस अवसर पर ट्रावन कोर कोचीन की राजमाता रानी गौरी लक्ष्मीबाई अश्वनी तिरूनाल ने कहा कि वेद व्यक्ति को न खोजे बल्कि व्यक्ति को तपस्या पूर्ण मार्ग से वेद की अन्वेशणा को जाना चाहिए। केरल की धरती पर इस समारोह को अद्वितिय बनाते हुए इस राजमाता ने एक महिला होते हुए भी वेद का विमोचन किया तथा केरल की ही एक कालरी विश्वविद्यालय की अनुसंधान विद्यार्थीनि कुमारी रेवती जी, जो एक दलित परिवार से सम्बंधित हैं, ऐसी महिला को इस यजुर्वेद भाष्य की प्रथम प्रति भेंट की।

इस अवसर पर बोलते हुए परा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने कहा कि यह हमारे लिए गर्व का विषय है कि केरल की जिस धरती पर जगतगुरु शंकराचार्य ने महिला ने वेद का विमोचन कर एक आदर्श स्थापित किया है तथा इस वेद की प्रथम प्रति भी एक महिला को और वह भी एक दलित महिला को समर्पित कर एक नया इतिहास लिखा है। इस के लिए केरल की यह संस्था बधाई की पात्र है। इस कार्य क्रम का संचालन प्रतिष्ठान के युवा कार्यकर्ता प्रशांत जी ने किया।

इस कार्यक्रम के द्वितीय सत्र में वेदोच्चारण की परम्परा को आधार बनाकर सिम्पोजियम हुआ। इस स्तर में वेद मूर्ति डा. सी एम् नीलकंठन नाम्पूतिरी, वेद मूर्ति वटक्कुम्पाठ नारायणन नम्पूतिरी, वेद मूर्ति कैमुक्कू श्रीधरण नाम्पूतिरी ने भाग लिया। वेद के प्रकृति पाठ, विक्रितिपाठ, पाठ करने की विधि आदि अनेक विषयों पर वैज्ञानिक प्रकाश डाला। प्रतिष्ठान के अध्यक्ष प्रोफैसर विश्वनाथन नम्पूतिरी ने कार्यक्रम का संचालन किया।

आगामी दिन के प्रथम सत्र के अवसर पर यज्ञोपरांत दयानंद पुरस्कार के सम्बन्ध में डॉ. धर्मराज अटाट अध्यक्ष के पद पर आसीन हुए। इस अवसर पर महात्मा गांधी विश्व विद्यालय के पूर्व कुलपति तथा एक्स ऑफिस शो प्रिंसिपल सेक्रेटरी शास्त्र एवं सांकेति विज्ञान डा. वी एन राजशेखर पिल्लाई ने कार्यक्रम का उदघाटन किया। केरल के श्री शंकराचार्य विश्वविद्यालय के कुलपति डा. दिलीप कुमार जी ने दयानंद पुरस्कार सम्मान की राशि ५५५५५ रुपए का ड्राफ्ट प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु जी को प्रदान किया। वक्ताओं ने एक मत होकर महर्षि दयानंद कृत उपकारों का संस्मरण किया। इस अवसर पर बोलते हुए डा. अशोक आर्य केरल वैदिक मिशन के संरक्षक (कौशाम्बी, गाजियाबाद उ.पर.) ने कहा कि वेद में तीन देवियों की आराधना का आदेश है। मातृ संस्कृति, मातृ भूमि तथा मातृ भाषा रुपी इन तीन देवियों के स्मरण से ही देश की रक्षा संभव है।

इस दिन की दुवितीय सभा में पारिस्थितिक समस्याओं का परिहार वेद के परिप्रेक्ष्य में, विषय के आधार पर चर्चा हुई। इस चर्चा का श्री गणेश प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डा. पि. वि. विश्वनाथन नाम्पूतिरी ने किया। डा. पि. वि नारायणन एवं डा. के पि श्रीदेवी ने चर्चा में भाग लेते हुए अपने विचार प्रकट किये। प्रतिष्ठान के महामंत्री श्री रा. टी. रघुनाथ जी ने आये हुए सब श्रोताओं तथा अभ्यागत गण के प्रति आभार प्रकट किया।

डा. अशोक आर्य
१०४-शिप्रा अपार्टमेंट
कौशाम्बी, गाणियाबाद
मो. : ०९७१८५२८०६८

thearyasamaj.org

कर्मफल सिद्धांत-कुछ अनसुलझे प्रश्न

आजकल सभी चैनलों पर काश्मीर में जल-प्लावन प्रलय के भयंकर दृश्य दिखाए जा रहे हैं। मैं भी देख रहा हूँ। तीनों सेनाओं की सम्मिलित टुकड़ियों के प्रयास से हजारों लोगों को प्रतिदिन बचाया जा रहा है। समाचार केवल श्रीनगर और जम्मू के आ रहे हैं। बाकी के लिये कहा जा रहा है कि १२२० ग्रामों में से ४५० ग्राम बिल्कुल नेस्तनाबूद हो गये हैं। उनका अस्तित्व ही मिट गया है। जन-धन की हानि का आंकलन करने का अभी समय नहीं है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने वायुयान द्वारा स्थिति का आकलन किया और एक हजार करोड़ की सहायता राशि की घोषणा की। कोई खबर नहीं है कि इस घोषणा से पूर्व उन्होंने केबिनेट की मीटिंग बुलाई अथवा नही। रक्षामंत्री श्री अरुण जेटली मुम्बई में अस्पताल में भर्ती थे। प्रधानमंत्री जी ने सशस्त्र सेनाओं को तत्काल राहत कार्यवाही करने का आदेश दिया और बिना समय खोये सेना इस काम में जुट गई। श्री मोदीजी के काम करने का तरीका तो अब सबके समझ में आ गया होगा। विपक्ष को भी समझ में आ गया। खैर, राजनीति से मुझे क्या लेना देना।

रात तीन बजे नींद खुल गई। घड़ी में समय भी देखा। सोचा सो जाऊँ। अभी क्या करूँगा। मस्तिष्क सक्रिय हो चुका था बाढ़ से निकाली गई १०-१२ साल की लड़की से टी.वी. संवाददाता ने पूछा- तुमने क्या देखा? कहा-लाशों के ढेर बहे जा रहे थे और पीड़ा से उसकी मुख मुद्रा बिलकुल बदल गई। अन्य लोगों ने बताया कि उन्होंने अपने बच्चों को जलप्रवाह में बहते देखा है। अनेक शव पेड़ों पर लटके हुए हैं। बचाव कार्य दिनरात चल रहा है तो ११ सितम्बर २०१४ तक सेना द्वारा १ लाख १० हजार मानव जीवन बचाया जा सका है। छै: लाख अभी भी बाढ़ में फंसे हुए है।

त्रासदी के दो पक्ष हैं। एक तो वे जिन्हें जल समाधि मिल गई। दूसरे वे जो बच गये। जम्मू-कश्मीर की मूल आबादी के अतिरिक्त देश-विदेश से आये हजारों पर्यटक भी हैं और संचार व्यवस्था ठप्प हो जाने से समाचार भी नहीं मिल रहे हैं। उनकी भी भूख-प्यास, नींद भी गायब हो गई है।

सम्पूर्ण क्षेत्र में १५ से २० फीट तक पानी भरा है। दो-तीन मंजिलें मकानों की छतों पर ही सात दिन से भूखे प्यासे हैलीकोप्टर द्वारा लिफ्ट करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस कष्ट का अनुमान तभी हो सकता है जब दिनों को घण्टों में और घण्टों को मिनटों में, सैकण्डों में परिवर्तित किया जावे और उनके कष्ट की अनुभूति की जावे।

इस पूरी अकल्पित, अयाचित प्राकृतिक त्रासदी पर मेरा कष्ट कुछ अलग है। सितम्बर २०१२ में मैने एक लेख ''कर्मफल सिद्धांत -एक अलग दृष्टिकोण'' लिखा था जिसे आठ पत्र-पत्रिकाओं ने प्रकाशित किया था। यह मेरी पुस्तक ''ऋषि-अर्पण'' का अंश है। परोपकारी (अजमेर) को मैंने यह लेख प्रेषित नहीं किया था लेकिन परोपकारी ने दिसम्बर २०१२ के प्रथम अंक में आचार्य सत्यजीत ने उसकी बखिया उधेड़ी थी। दोनो पढ़कर आर्य-जगत् के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान ने मुझे पत्र द्वारा सूचित किया कि आचार्य जी की काट बिलकुल सतही है। इन्टरनेट पर आचार्य सत्यजीत का इस विषय में संक्षिप्त प्रवचन हुआ। उससे आचार्य सत्यजीत का इस विषय में संक्षिप्त प्रवचन हुआ। उससे आचार्य जी को सोच का और पता चला। आचार्य जी कहते हैं कि किसी अपराध की शासन द्वारा दी गई सजा अपर्याप्त है तो ईश्वर जितनी सजा आवश्यक समझता है वह स्वयं सजा देकर पूर्ति करता है। आचार्य सत्यजीत के लेख का मैंने उत्तर प्रेषित किया था जिसको परोपकारी ने मई २०१३ (प्रथम) में प्रकाशित किया। आचार्य जी ने शास्त्रीय भाषा व प्रमाणों में मुझे उलझाना चाहा था। फिर उनका अलग से पत्र आया था कि परोपकारी के जिज्ञासा समाधान कॉलम में अब वह नहीं लिख रहे हैं।

- अभिमन्यु कुमार खुल्लर

आठ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने पर भी आर्यजगत् के किसी विद्वान और संन्यासी ने कोई अभिमत नहीं दिया। संभवत: उनके लिये वेद में जो भी लिखा है वह अंतिम प्रमाण है। उसकी आलोचना नहीं हो सकती। उस पर विवाद नहीं हो सकता। ठीक है। विचार तो किया ही जा सकता है। विचार करने का ही मेरा आग्रह था। महर्षि ने भी बुद्धि की धरातल पर तौलकर ही तो कोई बात स्वीकार करने का आदेश दिया है।

मैंने उस लेख में कर्मफल सिद्धांत के प्रश्न के संबंध में अनेक जिज्ञासाएं प्रस्तुत की है। उनकी पुनरावृत्ति इस लेख में नहीं करुंगा। केवल एक पक्ष को उजागर कर विद्वत जनों एवं संन्यासियों से वेद सम्मत समाधान की अपेक्षा रखता हूँ।

वैदिक धर्मी तीन अनादि सत्ताएं मानते हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति। ईश्वर और जीव की चर्चाएं वेद में, उपनिषद् एवं अन्य ग्रन्थों में बहुत हैं। प्रकृति भी अनादि सत्ता है। ईश्वर उसका उपयोग सृष्टि निर्माण कार्य में करता है। जीव उसका उपभोग करता है। ऐसी स्थिति में जीवन का प्रकृति द्वारा लालन पालन और विनाश भी होता है।

जन्म और मृत्यु, पाप और पुण्य की अवधारणा से जुड़ी हुई है। जन्म पर विचार करें तो विकासशील देशों-एशिया व अफ्रीका के देशों में जन्म संख्या जैट स्पीड से बढ़ रही है। महर्षि दयानंद के समय भारत की जन्म २० करोड़ थी और आज १२० करोड़ से ज्यादा है। वैदिक धर्मियों के पास भी इस जनसंख्या वृद्धि का वेद प्रमाणित कोई उत्तर नहीं है और है तो मैं जानना चाहूँगा।

कश्मीर की महाप्रलय ने प्रकृति की विनाशकारी शक्ति का विकराल स्वरूप दिखाया है। कश्मीर समतल प्रदेश नहीं है और यदि वहाँ बाढ़ का पानी बीस फीट की उँचाई पर बह रहा है तो कल्पना कीजिए वहाँ बचा ही क्या होगा? जन-धन, पशु-धन-मकान-पेड़ सबको बहा ले गया प्रवाह।

बताईये, इस भारी मानव विनाश की संगति कर्मफल सिद्धांत में कैसे बिठाएंगे? यही बात संदर्भित लेख में उत्तराखण्ड जल प्रलय व सुनामी आपदाओं के विषय में मैंने उठाई थी। सुनामी ने पाँच लाख व उत्तराखण्ड में भी हजारों लाशें। उत्तराखण्ड में लाशें अभी कुछ समय पूर्व तक निकाली जा रही थी। ये सब 'मृत्यु' ईश्वरीय कर्मफल-व्यवस्था के अंतर्गत हुई। मुझे मानने में बहुत संकोच है, आपत्ति है।

जल प्रलय के पश्चात् प्राकृतिक आपदाओं में वायरस-रोगाणु जन्य बीमारियों से हजारों मानव काल-कवलित हो जाते है। पहिले मलेरिया, फिर टी.बी. (तपेदिक) और अब डेंगू, मेननजाइटिस, एवसेफिलाईट्स, चिकनगुनियाँ, कैंसर और अभी पिछले एक दो महिनों से एबलो महामारी/बीमारी नाम का नाम सुना जा रहा है। मानव द्वारा इतनी पीडा, यातना को भी क्या कर्मफल सिद्धांत की परिधि में लाया जा सकता है? क्या इनके द्वारा ईश्वर पीड़ा व मृत्यु देनेके नये नये औजारों का निर्माण करता है?

आर्य सन्यासियों व विद्वानों से आग्रह है कि इस लेख का पता चलने पर अपने विचारों से आर्य जनता को लाभान्वित करें। मौन न रहें। मैं निवेदन कर रहा हूँ कि आर्यजगत् व इतर की पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों से नाचीज लेखक को पर्याप्त प्रोत्साहन मिल रहा है। यह लेख विद्वानों व सन्यासियों से समाधान की अपेक्षा रखता है।

22 जीवाजीगंज, लश्कर,ग्वालियर - 474 001 (म0 प्र0)
फोन : 0751-2425931

thearyasamaj.org

३. जीवन-बन्धनों से मुक्ति

डा. बलदेव सहाय

जाग्रत अवस्था की हलचल के बाद हमारे जीवन का अधिकांश भाग निद्रा की गोद में व्यतीत होता है। नवजात शिशु का तो लगभग २०-२१ घण्टे प्रतिदिन सोना आवश्यक है, बालक भी १०-१२ घण्टे सोते हैं, उसके बाद ७-८ घण्टों में नींद पूरी हो जाती है, वृद्धावस्था में नींद कम होती है और कुछ लोगों को तो नींद की गोली खाकर सोना पड़ता है। सोने पर लगभग सबको ही सपने आते हैं। यह बड़ी रहस्यमयी अवस्था है। इस पर भारत और विदेश में बहुत-कुछ अनुसंधान हुआ है, पर गुत्थी अभी तक सुलझी नहीं है। हम विभिन्न मतों पर विचार करेंगे क्योंकि हो सकता है इस अवस्था के गम्भीर अध्ययन से हमें आत्मा के स्वरूप को समझने में सहायता मिले। **माण्डूक्योपनिषद्** का अगला मंत्र इसी अवस्था का निरूपण करता है।

निद्रा में भी उन्नीस इन्द्रियाँ-पाँच-पाँच ज्ञान और कर्म इन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्त:करण (जिनका वर्णन हम पिछले लेख में कर चुके हैं) - विद्यमान रहती हैं। आत्मा का विराट रूप, सप्तांग अर्थात् सात अंग-प्रकाशक्षेत्र, सूर्य- चन्द्र, दिशाएँ, वायु, वेद, विश्व और पृथ्वी- भी बने रहते हैं। पर जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में आमूल अन्तर हैं। जाग्रत में सारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होती हैं, स्वप्न में अन्तर्मुखी-अन्त:प्रज्ञ:, और जीव सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा भोग करता है, अत: यह भोग विचारमय, भावमय जगत का भोग है। इसलिए यह स्थूलभुक् न होकर प्रविविक्तभुक् कहा गया है। जाग्रतावस्था में जीवात्मा वैश्वानर है, भिन्न-भिन्न नरों के शरीर ही आत्मा के शरीर हैं; स्वप्नावस्था में जीवात्मा का शरीर तैजस है, सूक्ष्म है। यह आत्मा का दूसरा चरण है। मंत्र इस प्रकार है:

स्वप्नस्थानो अन्त:प्रज्ञ: सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुख:
प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीय: पाद:।

सामान्य धारणा यह है कि जागते समय हम वास्तविक वस्तुओं के सम्पर्क में आते हैं और सोते हुए काल्पनिक वस्तुओं के, जागते हुए हमें सच्चा सुख-दु:ख अनुभव होता है और सपने में झूठ। जाग्रत जगत को हम स्वयं उत्पन्न नहीं करते पर सपनों की दुनिया हमारी कल्पना निर्मित करती है। अत: हमने मान लिया है कि जाग्रत अवस्था सत्य है और स्वप्नावस्था असत्य। ऐसी मान्यता सत्य तो अवश्य प्रतीत होती है, पर नितान्त सत्य नहीं है क्योंकि यह धारणा केवल एकपक्षीय विवेचन पर आधारित है। स्वप्नावस्था को हम जाग्रत जगत की तुलना में असत्य मानते हैं और जागते हुए सपनों को असत्य। पर जब हम जाग रहे होते हैं तो हमें स्वप्नावस्था का ज्ञान नहीं होता और सपने में जागने की अवस्था को नहीं जानते। दोनों अवस्थाओं के सत्यासत्य का निर्णय केवल ऐसी सत्ता कर सकती है जिसको दोनों अवस्थाओं का एक-साथ परिचय प्राप्त हो।

किसी न्यायालय में एक मुकदमा आता है। किसी भी 'केस' में दो पक्ष होते हैं। प्रत्येक अपनी-अपनी बात करता है, अपने पक्ष के समर्थन में दलीलें देता है, गवाह पेश करता है। एक तीसरा निष्पक्ष न्यायाधीश दोनों की बात सुनता है, गवाहों के बयान पर ध्यान देता है, अधिवक्ताओं के तर्क-वितर्क का निरीक्षण करता है और तब अपनी निर्णय सुनाता है; केवल एक पक्ष की बात सुनकर फैसला नहीं देता। जागने और सोने के संदर्भ में आप दोनों पक्षों की बात तो सुनते नहीं, फिर भी आप दोनों के बारे में दावे से अपना मन्तव्य देने में नहीं चूकते। ऐसा आप इसलिए करते हैं क्योंकि आप दोनों अवस्थाओं को अलग-अलग तो जानते ही हैं और एक अवस्था से दिन में औ दूसरी से रात में जीवन-पर्यन्त गुज़रते हैं। वह कौन है जो गुज़रता है दोनों अवस्थाओं द्वारा-यह विचार का विषय है और **माण्डूक्योपनिषद्** साधारण मान्यताओं से कुछ अलग हटकर इस तथ्य का गंभीरता से विवेचन करता है।

हमारी माताएँ-बहनें भिन्न-भिन्न भोजन-सामग्री लेकर तरह-तरह के व्यंजन रसोई में तैयार करती हैं। जब हमको क्षुधा सताती है, जाग्रत अवस्था में हम उस भोजन को खा अपनी भूख शांत करते हैं। सपने का भोजन तो हमको तृप्त नहीं कर सकता । जागते हुए हम लोगों से मिलते-जुलते हैं, सम्बन्ध बनाते हैं, ऑफिस जाते हैं, कार्यरत होते हुए किसी के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं, अन्य के साथ बुरा। यदि किसी न्यायालय में कोई मुकदमा चल रहा हो तो जीतने पर हम उत्सव मनाते हैं, हारने पर मुँह लटक जाता है, दु:खी होते हैं। सत्य को हम सब स्वीकार कर लेते हैं। पर स्वप्न में भी तो हम तरह-तरह के व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं, उनके साथ राग या द्वेषपूर्ण व्यवहार करते हैं। कोई घटना अनुकूल घटित होती है तो प्रसन्न होते हैं, जब कुछ प्रतिकूल होता है तो दु:ख के सागर में डूब जाते हैं। जिस प्रकार जागते हुए हम ममता, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, काम से उद्वेलित होते हैं, ठीक उसी तरह स्वप्न में भी होते हैं। जैसे जागते समय सारी घटनाएँ एवं भावावेश हमको यथार्थ प्रतीत होते हैं, उसी तरह स्वप्न में उतने ही सत्य अनुभव होते हैं। फिर हम एक को सत्य और दूसरे को असत्य क्यों कहते हैं? यह ठीक है कि सपने का भोजन जागने में उत्पन्न क्षुधा को शांत नहीं कर पाता, पर स्वप्न की क्षुधा को तो वह अवश्य शांत करता है। फिर जागने की क्षुधा की आप सपने के भोजन के साथ क्यों तुलना करते हैं? यह तो एकदम युक्तियुक्त नहीं है। सपने की क्षुधा को सपने के भोजन और जागने की क्षुधा को जागने के भोजन से ही तालमेल करना उचित है। यदि सपने के भोजन से जाग्रत अवस्था की भूख समाप्त नहीं हो सकती, तो जागते समय के भोजन से सपने की क्षुधा की भी तुष्टि नहीं होती। दोनों अलग-अलग अवस्थाएँ हैं और दोनों अपनी-अपनी-अपनी पर सत्य प्रतीत होती हैं। इसकी जानकारी उस सत्ता को है जो दोनों में से समान रूप से गुज़रती है।

एक दार्शनिक काक हना है कि जाग्रत अवस्था का एक राजा प्रतिदिन १२ घण्टे भिखारी होने का स्वप्न देखता है और उसी अवस्था का एक भिखारी प्रतिदिन बारह घण्टे राजा होने का सपना देखाता है। दोनों बारह घण्टे भिखारी और उतने ही समय राजा बने रहते हैं, तो उनमें क्या अंतर है? कौन राजा और कौन भिखारी है? आप कहेंगे जाग्रत अवस्था की बात ठीक है और सपना तो सपना ही होता है। यहाँ फिर आप निष्पक्ष तुलना करने से

thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-५ अंक-११ मुम्बई नवम्बर - २०१४ || पृष्ठ-१६ || मूल्य- रु. ९/-

कार्तिक २०७१ (नवम्बर २०१४) Post Date : 25-11-2014 MH/MR/N/136/MBI/-13-15 MAHRIL 06007/31/12/2015-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति,

टिकट

भटक गए। यह जाग्रत अवस्था का मन है जो जाग्रत जगत को सच्चा होने का दावा करता है। उसी तरह सोते हुए व्यक्ति की मन सपने के बारे में ऐसा दावा कर सकता है। प्रत्येक अपने-अपने पक्ष की बात कर रहा है, कोई भी निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता। क्या सपने में रोते-रोते हमारी सिसकियाँ बँध जाती हैं, डर के कारण हमारा शरीर काँपने लगता है- इतनी यथार्थ होती हैं सपने की संवेदनाएँ। वे उतनी ही सच्ची होती हैं जैसी जाग्रत अवस्था की संवेदनाएँ। अत:, यदि आप दोनों अवस्थाओं का नि:स्वार्थ, अनासक्त भाव से विश्लेषण करें तो बड़ी द्विविधा में पड़ जाएँगे। सम्भवत: अब भी आप उलझन अनुभव कर रहे होंगे।

जाग्रत अवस्था का रज्जु-सर्प का प्रसिद्ध उदाहरण लीजिए। एक रस्सी का टुकड़ा आपको साँप जैसा दिखाई देता है। साँप है नहीं, पर आप डरकर उछल पड़ते हैं क्योंकि आपने रस्सी नहीं देखी, केवल साँप देखा। बाद में निरीक्षण से पता चला कि वह साँप नहीं, रस्सी है। पर आप यह नहीं कह सकते कि साँप की धारणा असत्य थी। यदि असत्य थी तो आप डरे क्यों और अपने को उस कृत्रिम साँप से बचाने के लिए छलाँग क्यों लगाई? कारण यह है कि देखते समय सर्प असत्य नहीं था और जब आपने रज्जु को पहचान लिया तब साँप लोप हो गया। इसी तरह जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं की तुलना करनी चाहिए। आपको जाग्रत अवस्था उसी प्रकार सत्य प्रतीत होती है जिस प्रकार रज्जु में सर्प सत्य भासता है, और जिस तरह आप रस्सी में साँप देखकर कूदने-फाँदने लगते हैं, उसी तरह जाग्रत जगत की वस्तु, व्यक्ति, विषय हमको विचलित करते रहते हैं। हम उनके साथ चिपकते हैं, नित्य नवीन सम्बंधों को बना-बनाकर कभी हँसते हैं कभी रोते हैं, पर जब हम कोई दीपक लाते हैं तब उसके प्रकाश में पता चलता है कि वास्तविकता क्या है- यह साँप नहीं, केवल रस्सी का एक टुकड़ा है। उपनिषद् इसी प्रकाश की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है- दीपक का प्रकाश नहीं, ज्ञान का प्रकाश, जिसकी दमक से संसाररूपी सर्प लोप हो जाएगा और हम उस सत्ता के दर्शन कर सकेंगे जो जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में निर्बाध रूप से बहती है।

स्वप्न में मन इन्द्रिय-जनित जगत से हटकर अपने-आप में लीन हो जाता है। इसीलिए मंत्र में स्वप्नावस्था को 'अन्त:प्रज्ञ:' कहा गया है। सपने में आँखें बन्द होने पर भी हम सब-कुछ देकते हैं; जिह्वा किसी भोज्य पदार्थ के सम्पर्क में नहीं आती पर हम तरह-तरह के स्वाद लेते हैं। यदि कान और नासिका बन्द भी कर दिए जाएँ तब भी हम सब-कुछ सुनते हैं और गंध का अनुभव करते हैं। इस अवस्था में मन ही विभिन्न इन्द्रियाँ बनकर एक अद्भुत संसार सृष्ट कर उसको भोगता है जैसे जाग्रतावस्था में वह जाग्रत संसार को भोगता है। कुछ दार्शनिकों का यह भी कहना है कि जैसे हमारा मन सपनों का संसार रचता है, उसी तरह हमारा मन ही जाग्रतावस्था के संसार को सृष्ट करता है; और जैसे जागने पर सपने लोप हो जाते हैं, उसी तरह मानव जब एक और गहरी नींद से जागता है, मायाजाल से मुक्त होता है तो यह सत्य प्रतीत होनेवाला संसार भी लोप हो जाता है। जब नरेन (जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से सारे संसार में स्वामी विवेकानन्द के नाम से सारे संसार में प्रसिद्ध हुए) ने **स्वामी रामकृष्ण परमहंस** से कहा: ''यदि भगवान् है तो क्या आप मुझे उसके दर्शन करा सकते हैं?'' तो एक दिन परमहंस जी ने उनको अपनी तर्जनी से छू दिया और युवा नरेन्द्र दत्त एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूब गए, उनको संसार की प्रत्येक वस्तु एक नए ढंग से दिखाई देने लगी, और वह लगभग १०-१५ दिन तक आनन्दातिरेक अवस्था में रहे। तब एक दिन पास बिठाकर परमहंस जी ने उनकी इस अवस्था को वापस ले लिया और कहा- ''इस असीम आनन्द के तुम्हें अब तभी दर्शन होंगे जब तुम मेरा काम संसार में पूरा कर दोगे।''

जीवात्मा जाग्रत-स्थान में स्थूल शरीर है, इसे वैश्वानर कहते हैं, स्वप्नस्थान में वह सूक्ष्म शरीर है, इसे तैजस कहते हैं क्योंकि तब शरीर का अन्धकारमय आवरण हट जाता है और वह चमक उठता है। जब ब्रह्म स्वप्नस्थान में होता है तब सम्पूर्ण सृष्टि सूक्ष्म रूप में उसके विचार में होती है। जैसे कोई भवन-निर्माण करनेवाला, पहले भवन की रूपरेखा अपने मन में बनाता है फिर उसका नक्शा बनाता है और वह एक काल्पनिक भवन का आनन्द भी भोगने लगता है, इसी तरह ब्रह्म स्वप्नस्थान में, अपने विचार में बिना विश्व की रचना किए, विश्व-रचना का आनन्द भोग लेता है, इसलिए उसे भी जीवात्मा की तरह 'प्रविविक्तभुक्' अर्थात् 'विचार या विवेक में जिसने भोग लिया' यह कहा गया है।

अत: हमारी स्वप्नावस्था जाग्रतावस्था से कहीं अधिक गहन, गंभीर और रहस्यमयी लगती है। इसकी अभी और व्याख्या करने की आवश्यकता है जिससे हमें आत्मा का स्वरूप जानने में सहायता मिल सके।

(माण्डूक्योपनिषद् से साभार)